www.thearyasamaj.org

ओ३म्

सत्यापन क्रमांक : RAJHIN/2015/60530

महर्षि दयानन्द स्मृति प्रकाश

हिन्दी मासिक

वर्ष : २ अंक : २४ १ दिसम्बर २०१६ जोधपुर (राज.) पृ.:३६ मूल्य १५० रु वार्षिक

कार्यालय :
महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास
जसवन्त कॉलेज के पास, मोहनपुरा, जोधपुर (राजस्थान)
फोन :
0291-2516655

www.thearyasamaj.org

मुक्त हस्त से दान करें:

प्रिय पाठक-वृंद महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास विगत कुछ समय से महर्षि दयानंद सरस्वती स्मृति भवन में उन सुविधाओं का विकास कर रहा है, जिससे कि महर्षि के मिशन को आगे बढ़ाने हेतु स्मृति भवन में गतिविधियां सुचारु रूप से चल सके। आपके आर्थिक सहयोग के बिना यह संभव नहीं हो पाएगा। सहयोग का यह शुभ कार्य आप किसी व्यक्ति या अवसर की स्मृति को बनाए रखने के लिए कर सकते हैं, नि:स्वार्थ भाव से कर सकते हैं। एक कक्ष की लागत मात्र दो लाख रुपये रखी गई है । किसी कक्ष को अपने या स्वजन या अवसर के नाम कर सकते हैं, अंशदान भी कर सकते हैं। स्मृति भवन के विकास के पुनीत कार्य में आप भी मुक्त हस्त से दान करें और अपने स्वजनों को भी प्रेरित करें। महर्षि दयानंद सरस्वती स्मृति भवन न्यास को दिया गया दान आयकर एक्ट की धारा ८० जी के अधीन आयकर से मुक्त है। नयास का खाता-विवरण पृष्ठ 3 पर देखें ।

-आर्य किशनलाल गहलोत

कृण्वन्तो विश्वमार्यम् । -ऋग्वेद ९।६३।५

सबको श्रेष्ठ बनाओ

महर्षि दयानन्द स्मृति प्रकाश का मुख्य प्रयोजन

महर्षि दयानन्द सरस्वती के व्यक्तित्व, कृतित्व, व उनके द्वारा समस्त लिखित साहित्य तथा उनके सार्वभौमिक अद्वितीय कार्यों व सिद्धांतों का प्रचार-प्रसार स्थापना व व्यवहार में साकार करने के लिये कार्य करना ।

महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास, जोधपुर का मुखपत्र

महर्षि दयानन्द स्मृति प्रकाश

वर्ष : २ अंक : २४

दयानन्दाब्द : १९३

विक्रम संवत् : मार्गशीर्ष

कलि संवत् ५११७

सृष्टि संवत् :१,९६,०८,५३,११७

मार्गदर्शक

पं. सत्यानन्दजी वेदवागीश,

सम्पादक मण्डल :

प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु, अबोहर

डॉ. सुरेन्द्रकुमार, हरिद्वार

डॉ. वेदपालजी, मेरठ

पं. रामनारायण शास्त्री, सिरोही

आचार्या सूर्यादेवी चतुर्वेदा

कार्यवाहक सम्पादक :

कमल किशोर आर्य

Email: sampadakmdsprakash@gmail.com

9460649055

प्रकाशक :

महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास, जसवन्त कॉलेज के पास, जोधपुर ३४२००१

लेख में प्रकट किए विचारों के लिए सम्पादक उत्तरदायी नहीं है। किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्याय क्षेत्र जोधपुर ही होगा ।

Web.-www.dayanadsmritinyas.org.

वार्षिक शुल्क :१५० रुपये

आजीवन शुल्क : ११०० रुपये (१५वर्ष)

अनुक्रमणिका

	क्या	कहाँ
१.	सम्पादकीय	४
२.	ईश्वर-स्तुति....	७
३.	वेद-वचन......	८
४	अविनाश का उपाय..	१०
५.	आत्मा......	११
६.	आओ अपने घर चले..........	१७
७.	आर्यसमाज के सिद्धान्त...	२२
८.	सुधार की प्रथम दशा.....	२४
९.	दयानन्द बावनी.....	२७
१०.	नेपाल-प्रवास से पत्र...	२९
११.	एक सन्यासी की डायरी....	३१
१२.	स्वामी श्रद्धानन्द बलिदान....	३३

महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास

बैंक ऑफ बडौदा खाता संख्या-01360100028646

IFSC BARB0JODHPU

यह पांचवा अक्षर जीरो है

www.thearyasamaj.org

सम्पादक की कलम से.................

नोट-बंदी एक कसौटी

८ नवम्बर को प्रधानमंत्री ने दूरदर्शन पर जनता को सम्बोधित करते हुए और भारतीय रिजर्व बैंक ने सूचना जारी करते हुए ९ सितम्बर से ५०० एवं १००० के नोटों को बंद कर दिया । बैंक खाताधारियों के पास उपलब्ध बंद हुए नोट जमा करने, वैध नोटों की निकासी; खातारहित व्यक्तियों के बंद नोटों की बदली , वैध नोटों से करने हेतु नियम बनाए गए; जनता की परेशानियों के सामने आने के साथ-साथ उनके निवारणार्थ आदेश भी निरंतर जारी हो रहे हैं । इस प्रक्रिया में कुछ विचारणीय बिन्दु:

१. लोकतन्त्र में सत्ताधीशों में भी अर्थशुचिता का अभाव और अपनी सत्ता को स्थिर रखने की लालसा शासन के कठोर निर्णयों से सत्ता-समर्थकों और पोषकों को समयपूर्व अवगत करा देते हैं । फलत: ये लोग कठोर नियमों से प्रभावित नहीं या कम होते हैं । नोटबंदी में भी यह विकृति झलकी है ।

२. पूर्व सूचना से लाभान्वित न होने वाले राजनीतिज्ञ, अधिकारी, व्यापारी, अपराधी और आतंक के पोषकों द्वारा इसका विरोध करने व क्रियान्वियन में कमियों का लाभ उठाने से प्रजा पीड़ित हो रही है ।

३. यह कटु सत्य है कि सत्ता में बैठे लोग व प्रशासनिक अधिकारी भी जन-समस्याओं को सुलझाने में विलंब कर योजना को असफल करना चाहते हैं, ताकि एक तो योजना की वापसी से उनका काला धन बचे और दूसरे इससे बड़ी और कठोर योजना सामने न आए ।

४. बैंक यदि चाहते तो कतारों को कम किया जा सकता था। यदि बैंक में सिर्फ 2 काउंटर इस कार्य में लगे और ८-९ कर्मचारी शाखा में और भी उपस्थित हो तो बैंक प्रशासन में समर्पण का अभाव झलकता है। बैंक द्वारा सेवा-निवृत्त स्टाफ को इस पुनीत कार्य में लगाने की कार्यवाही नहीं या नगण्य की गयी। बैंक द्वारा इस कार्य को राष्ट्रीय मिशन के रूप में करने की आवश्यकता है।

५. योजना में कमियों का पूरा लाभ काले-धन वालों ने उठाया और ४०० रुपये के एवज में मजदूर और अधीनस्थ कर्मचारी तक लगाए ।

६. ऐसे मामलों में देश-भक्ति और देश-द्रोह के मध्य की रेखा बहुत क्षीण और भंगुर होती है। स्वजनों का काला धन जमा करने वालों, ४०० रुपयों के बदले ४००० का काला धन बदलने वाले मजदूरों, इस योजना में सहयोग व सुझाव न देकर योजना का विरोध करने वालों, बुजुर्ग स्वजनों को कतारों में लगाने वाले समर्थ परिजनों, विवाह में भोज को तैयार किन्तु नोटबंदी में परेशान परिवार को मदद न करने वाले समधियों और स्वजनों को भी गंभीर चिंतन करना चाहिए कि वे मध्यरेखा के उस ओर तो नहीं पहुँच गए, जहां उन्हें होना नहीं चाहिए।

www.thearyasamaj.org

७. नोटबंदी में विवाह के लिए परेशान परिवारों में गैर-हिन्दू कितने हैं? विवाह के पुनीत कर्म में भी आडंबर, दहेज, मुहूर्त, पाखंड, रिवाजों और भय से जकड़े इस समाज को महर्षि का मार्ग अपनाना ही होगा। अन्यथा ऐसे अवसर पर विवाह ३० दिसम्बर के बाद करने, अल्प या बिना व्यय के करने में संकोच क्यों? मृत्यु के वर्ष भर बाद बरसी कर सकते हो, तो विवाह के ५० दिन बाद भोज व लेनदेन क्यों नहीं? इस संकट के बहाने ही सही पाखण्ड और कुरीतियों पर सोचें जरूर ।

८. विवाह के पूर्व खातों को खाली कर बंदनोटों के रूप में नकदी जमा करने वाले माता-पिता ८ नवंबर के बाद पैसे जमा कराते हैं तो ढाई लाख की निकासी के हकदार क्यों नहीं? जमा और निकासी का रिकार्ड उपलब्ध है और रहेगा। जांच कभी भी की जा सकती हैं।

९. बंद हुए १००० के नोटों का जैसलमेर में धारक २००० रुपये बदलवाने जयपुर की रिजर्व बैंक में जाएगा? शासन खाते खोलकर वहीं जमा कराने की सुविधा का प्रचार क्यों नहीं करता?

१०. नए मुद्रित नोटों में मुद्रण त्रुटि सामने आने पर भी मुद्रण में लगे जिम्मेदारों पर कार्यवाही में विलंब उनके हौसले बढ़ाएगा। योजना में बाधक कोई भी त्रुटि या अवचार अक्षम्य हो ।

११. सत्ता में निःसंदेह तुगलकी निर्णय और संवेदना की कमी तो है जिन्हें दूर करने के लिए सरकार को सख्त होकर कुछ बड़ों की बलि देनी ही चाहिए ताकि शेष तंत्र प्रजा के प्रति संवेदनशील हो।

१२. अब इस निर्णय की वापसी सिर्फ काले धन वालों के लिए हितकारी है। अतः योजना विरोधियों और विपक्ष को वितंडावादी मात्र बनने की बजाय इसे लागू करने में सहयोग, जन-जागृति, और जन-सहयोग का काम करना चाहिए।

१३. इस योजना के कारण यदि कोई भूखा मरता है तो पार्टी और नेताओं के खाद्य-पदार्थ के जमाखोरों से रसूखात क्या सिर्फ चुनावों में लंगर चलाने, पार्टीफंड और स्वार्थ के लिए ही है? सत्ता और विपक्षी पार्टियों- दोनों को इस पर सोचना चाहिए। पार्टी मशीनरी तो हर ब्लॉक स्तर पर है। उससे कुछ तो देश हित कर लो।

निरर्थक नव-वर्ष:

ग्रिगेरियन कलेंडर और ईसाइयतादि चाचाजात संप्रदायों के अनुसार दिसम्बर माह के अंतिम दिन अर्धरात्रि से नववर्ष का उत्सव भारत सहित विश्व में आरंभ होगा। अवैज्ञानिक कलेंडर, कबीलाई मतों और विदेशी आक्रांताओं की विकृत संस्कृति के संवाहक अवशेषों में से एक इस उन्माद को मूर्ख लोग ही मना सकते हैं। किन्तु जब ऋषियों की विरासत के उत्तराधिकारी इस उन्माद से सम्मिलित होते हैं तो यह दर्शाता है कि विश्वगुरु आर्यवर्त्त की ऋषि-संतान अपनी गौरवमय विरासत, परम्पराओं और मूल्यों के प्रति कितनी अज्ञ है।

www.thearyasamaj.org

विजेता अपनी संस्कृति और सभ्यता को पराजित पर थोपता है। कभी '**कृण्वन्तो विश्वमार्यम्**' के वैदिक उद्घोष से अनुप्राणित हो चक्रवर्ती सम्राट बने भारतीयों के वंशज भले ही नवगीत 'नहीं चाहते हम दुनिया पर अपना राज जमाना' से भ्रमित हो दुनिया पर राज न करे, किन्तु पुरुषार्थ-हीन होकर दुनिया को भी अपने पर राज सांस्कृतिक अतिक्रमण के रूप में भी न करने दे। ३१ दिसम्बर के उपासकों को समर्पित कुछ पंक्तियाँ:

नयी धरा ना नया गगन है; नयी छटा ना नया चमन है!
कुंचन है अंकुरण नहीं है; जकड़न है स्फुरण नहीं है!
बारह मासी एक वर्ष में; दशमे मास समापन कैसा?
कमल समझ नहीं पाता है; यह है नव संवत्सर कैसा!
तुम आर्ष रीति के संवाहक; दासत्व मनज क्यों पाले हो?
अबतो निज धरा-गगन भी है; जंजीर गले क्यों डाले हो?
विजयी स्व-तंत्र थोपता है; हारे का स्वत्व छीनता है!
खुद को कहते स्वतंत्र तुम हो; माने अरि-परंपरा क्यों हो!
इति से पहले क्यों इति मानू? पौ फटी नहीं, क्यों अथ मानूँ?
कृष्ण पक्ष की अमा-रैन में; नव-संवत्-अथ क्यों जानूँ?
स्मित-निसर्ग, हर्षित प्राणी हो; माह चैत्र का, पक्ष शुक्ल हो !
प्रतिपदा की शोभित प्रभात में; स्वस्ति-सुमंगल का प्रदानहो !
हे विश्व-गुरू के वारिस जन; सृष्टि संवत प्रतिपादक हो !
सृष्टि से विक्रम सम्वत् के; आरंभ चैत्र से जानत हो !
तवलक्ष्य हो भव-तम हरने का; आर्यत्व विश्व में भरने का !
इसलिए त्याग दासत्व - चिन्ह; संकल्प लो भव-गुरू बनने का !

-कमल किशोर आर्य

लेखकों से निवेदन

इस पत्रिका का उद्देश्य महर्षि मिशन को प्रचारित-प्रसारित करना हैं। आर्य जगत के चिंतकों और लेखकों से निवेदन है कि ऋषि मिशन की पूर्ति में सहयोग हेतु अपनी रचनाओं को प्रकाशनार्थ भिजवाएं। रचनाएँ महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास के पते पर या sampadakmdsprakash@gmail.com **के पते पर ईमेल से भी भेजी जा सकती हैं।**

-कमलकिशोर आर्य
संपादक

www.thearyasamaj.org

ईश्वर-स्तुति

प्रार्थना

तमूतयो रणयञ्छूरसातौ तं क्षेमस्य क्षितयः कृण्वत त्राम् ।
स विश्वस्य वरुणस्येश एको मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ।। ४१ ।।

व्याख्यान–हे मनुष्यो ! "**तमूतयः**" उसी इन्द्र–परमात्मा की प्रार्थना तथा शरणागति से अपन को "**ऊतयः**" अनन्त रक्षण तथा बलादि गुण प्राप्त होंगे । वही "**शूरसातौ**" युद्ध में अपने को यथावत् "**रणयन्**" रमण और रणभूमि में शूरवीरों के गुण–परस्पर प्रीत्यादि प्राप्त करावेगा "**तं क्षेमस्य क्षितयः**" हे शूरवीर मनुष्यो ! उसी को क्षेम=कुशलता का "**त्राम्**" रक्षक "**कृण्वत**" करो, जिससे अपना पराजय कभी न हो, क्योंकि, "**सः, विश्वस्य वरुणस्य**" सो करुणामय, सब जगत् पर करुणा करनेवाला "**एकः**" एक ही "**ईश**" ईश है, अन्य कोई नहीं । "**मरुत्वान्**" प्राणवायु, बल, सेनायुक्त वह परमात्मा "**नः ऊती** (ऊतये) **भवतु**" हम लोगों पर स्वकृपा से सम्यक् रक्षक हो, ईश्वर से रक्षित हम लोग कभी पराजय को प्राप्त न हों ।।४१।। –ऋ० १।७।९।७

स पूर्वया निविदा कव्यतायोरिमाः प्रजा अजनयन्मनूनाम् ।
विवस्वता चक्षसा द्यामपश्च देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ।। ४२ ।।

व्याख्यान– हे मनुष्यो ! "**सः**" सो ही "**पूर्वया, निविदा**" अनादि, सनातन, सत्यता आदि गुणयुक्त अग्नि–परमात्मा था, अन्य कोई नहीं था । तब सृष्टि के आदि में स्वप्रकाशस्वरूप एक ईश्वर प्रजा की उत्पत्ति की ईक्षणता (विचार) करता भया । "**कव्यतायोः, इमाः**" और सर्वज्ञतादिसामर्थ्य से सत्यविद्यायुक्त वेदों की तथा "**मनूनाम्ः**" मननशीलवाले मनुष्यों की तथा अन्य पशु–वृक्षादि की "**प्रजाः**" प्रजा को "**अजनयत्**" उत्पन्न किया–परस्पर मनुष्य और पशु आदि के व्यवहार चलने के लिए, परन्तु मननशीलवाले मनुष्यों को स्तुति करने योग्य अवश्य वही है । "**विवस्वता चक्षसा**" सूर्यादि तेजस्वी सब पदार्थों का प्रकाशनेवाला, अपने बल से "**द्याम्**" स्वर्ग (सुखविशेष), सब लोक "**अपः**" अन्तरिक्ष में पृथिव्यादि मध्यमलोक और निकृष्ट दुःखविशेष नरक और सब दृश्यमान तारे आदि लोक उसी ने रचे हैं। जो ऐसा सच्चिादानन्दस्वरूप परमेश्वर देव है उसी "**द्रविणोदाम्**" विज्ञानादि धन देनेवाले को ही "**देवाः**" विद्वान् लोग "**अग्निम्**" अग्नि "**धारयन्**" जानते हैं । हम लोग उसी को ही भजें ।।४२।। –ऋ० १।७।३।२

–आर्याभिविनय से

www.thearyasamaj.org

वेद-वचन

पाशों को काट दे

उदुत्तमं मुमुग्धि नो वि पाशं मध्यमं चृत ।

अवधमानि जीवसे ।। ऋग्वेद-१।२५।२१

पदार्थः- हे अविद्या अन्धकार के नाश करनेवाले जगदीश्वर ! आप (नः) हम लोगों से (जीवसे) बहुत जीने के लिए हमारे (उत्तमम्) श्रेष्ठ (मध्यमम्) मध्यम दुःखरूपी (पाशम्) बन्धनों को (उन्मुमुग्धि) अच्छे प्रकार छुड़ाइए तथा (अधमानि) जो कि हमारे दोषरूपी निकृष्ट बन्धन हैं उनका भी (व्यवचृत) विनाश कीजिए ।

भावार्थः- जैसे धार्मिक, परोपकारी विद्वान् होकर ईश्वर की प्रार्थना करते हैं, जगदीश्वर उनके सब दुःख बन्धनों को छुड़ाकर सुखयुक्त करता हैं, वैसे कर्म क्या हम लोगों को नहीं करने चाहिएँ ?

ईश्वरोपासक को दुःख कहाँ ?

नहि तेषाममा चन माध्वसु वारणेषु ।

ईशे रिपुरघशꣳसः ।। यजु-३।३२

पदार्थः- जो ईश्वर की उपासना करने वाले हैं (तेषाम्) उनके (अमा) गृह (अध्वसु) मार्ग और (वारणेषु) चोर, शत्रु, डाकू, व्याघ्र आदि के निवारण करने वाले संग्रामों में (चन) भी (अघशंसः) पापरूप कर्मों का कथन करनेवाला (रिपुः) शत्रु स्थित नहीं होता और (न) न उनको क्लेश देने को समर्थ हो सकता है । उस ईश्वर और उन धार्मिक विद्वानों को प्राप्त होने में मैं (ईशे) समर्थ होता हूँ ।

भावार्थः- जो धर्मातमा वा सबके उपकार करनेवाले मनुष्य हैं, उनको भय कहीं नहीं होता और शत्रुओं से रहित मनुष्य का कोई शत्रु भी नहीं होता ।

ईश्वर का न्याय

अग्निस्तिग्मेन शोचिषा यासद्विश्वं,

न्यात्रिणम् । अग्निर्नो वनते रयिम् ।। २२ ।। ऋग्वेद-६।१६।२८

पदार्थः- हे राजन् ! जैसे (अग्निः) अग्नि (तिग्मेन) तीव्र (शोचिषा) प्रकाश से प्राप्त हुए वस्तु को जलाता है, वैसे जो (विश्वम्) सम्पूर्ण (अत्रिणम्) शत्रु के प्रति (नि यासत्) प्रयत्न करे और वैसे जो

www.thearyasamaj.org

(अग्निः) अग्नि के सदृश (नः) हम लोगों के लिये (रयिम) द्रव्य का (वनते) सेवन करता है, उसको अध्यक्ष करिये ।

भावार्थ :- इस मंत्र में वाचक लुप्तोपमालंकार है । राजा को चाहिये कि अधिकारियों के नियत करने में प्रजा की सम्मति भी ग्रहण करें, ऐसा होने पर कभी भी उपद्रव नहीं होता है ।

पत्थर समान शरीर

एह्यश्मानमा तिष्ठाश्मा भवतु ते तनूः ।

कृण्वन्तु विश्वे देवा आयुष्टे शरदः शतम् ।। अथर्व-१।२५।२१

पदार्थः- "हे ब्रह्मचारिन्" (एहि=आ+इहि) तू आ, (अश्मानम्) इस शिला पर (आ+तिष्ठ) चढ़, (ते) तेरा (तनूः) तन "शरीर" (अश्मा) शिला "शिला-जैसा दृढ़" (भवतु) होवे। (विश्वे) सब (देवाः) उत्तम गुणवाले "पुरूष और पदार्थ" (ते) तेरी (आयुः) आयु को (शतम्) सौ (शरदः) ऋतुओं तक (कृण्वन्तु) "दीर्घ" करें ।

भावार्थः- ब्रह्मचारी को शिक्षा दें कि वह यथा-नियम पथ्य- सेवन, व्यायाम, ब्रह्मचर्य और पौरुष करके अपने शरीर को दृढ़ और स्वस्थ रक्खें और विद्वानों के मेल और उत्तम पदार्थों के सेवन से पूर्णायु भोगकर संसार का उपकार करे । अर्थात्

(क) शरीर को दृढ़ बनाने की भावनावाले हो ।

(ख) सूर्यादि देवो के संपर्क में जीवन बिताएं ।

(ग) दिव्य गुणों को मन में धारण करें ।

पाठको से निवेदनः

प्रिय पाठक-वृंद महर्षि दयानंद स्मृति प्रकाश आपके आर्थिक सहयोग से ही प्रकाशित होती हैं। कृपया अपने स्वजनों में इसका प्रचार प्रसार कर अधिकतम सदस्य बनाने का प्रयास करें। हम महर्षि के मिशन की दृष्टि से यह कार्य कर रहे हैं इसीलिए सदस्यता शुल्क समाप्त हो जाने के बाद भी हम ग्राहकों को पत्रिका निरंतर भेज रहे हैं। किन्तु आपके सहयोग के बिना यह भी संभव नहीं हो पाएगा। कृपया अपने सहयोग के महत्व को जाने, और बकाया सदस्यता शुल्क शीघ्र जमा करवाएँ।

www.thearyasamaj.org

अविनाश का उपाय

स घा वीरो न रिष्यति, यमिन्द्रो ब्रह्मणस्पतिः ।

सोमो हिनोति मर्त्यम् ।। ऋग् १।१८।४

ऋषिः मेधातिथिः काण्वः । देवता इन्द्रः, ब्रह्मणस्पतिः सोमश्च । छन्दः गायत्री ।

★ (स) वह (वीरः) वीर (घ[1]) निश्चय ही (न) नहीं (रिष्यति[2]) क्षतिग्रस्त और विनष्ट होता है, (यं) जिस (मर्त्य) मर्त्य को, मरणधर्मा को (इन्द्रः) इन्द्र, (ब्रह्मणस्पतिः) ब्रह्मणस्पति [और] (सोमः) सोम (हिनोति[3]) बढ़ाता है।

★ क्या तुम वीर हो और तुम्हें यह विश्वास है कि जगत् की बीहड़ पगडंडी पर चलते हुए तुम किसी शत्रु से क्षतिग्रस्त या विनष्ट नहीं होगे ? पर कहीं ऐसा तो नहीं है कि समय आने पर तुम्हारा यह विश्वास असत्य सिद्ध हो और तुम हृदय में एक वेदना लिये हुए सिसको, चिल्लाओ, शोर मचाओ कि अरे मैं तो मारा गया, मेरा तो सब-कुछ लुट गया, मैं तो क्षत-विक्षत हो गया। यदि तनिक भी तुम्हें अपने ऊपर सन्देह है, जरा भी मन कहता है कि विपदा आने पर सुरक्षित बच निकलना कठिन है, अचलायमान होकर दृढ़ता के साथ अविनष्ट बने रहना दुष्कर है, तो आओ, कान खोलकर अविनाश का वेदोक्त उपाय सुनो अविनाश! अविनाश !! कितना महान् शब्द है ! कितना कुछ इसके अन्दर छिपा हुआ है ! आत्मिक अविनाश, भौतिक अविनाश, वैयक्तिक अवनाश, राष्ट्रीय अविनाश ! पग-पग पर मनुष्य विनष्ट होता है, चरित्र से विनष्ट होता है, धर्म से विनष्ट होता है, सम्पत्ति से विनष्ट होता है, राष्ट्रीयता से विनष्ट होता है । उस सकल विनाश से बचना कितनी बड़ी उपलब्धि है ? वह प्राप्त होती है उस मर्त्य को, जिसे इन्द्र, ब्रह्मणस्पति और सोम बढ़ाते है । "इन्द्र" है अग्रगामिता का शौर्य का, अविचलता का, रिपु-विदारण का और परमैश्वर्यशालिता का प्रतिनिधि । वैदिक वर्णन इन्द्र की इन विशेषताओं से भरे पड़े है । हम अपने अन्दर भी इन्द्र के इन गुणों को ग्रहण कर सकते हैं । ब्रह्मणस्पति ज्ञान, महत्ता, विशालता, वृद्धि, ब्रह्मवर्चस आदि का प्रतिनिधित्व करता है । ब्रह्मणस्पति के इन आदर्शो को हम अपने अन्दर प्रतिविम्बित कर सकते हैं । "सोम" है शान्ति, रसमयता, समस्वरता, सर्जनशीलता, सत्प्रेरणा आदि का प्रतिनिधि । अतः वैदिक सोम से इन विशेषताओं को हम प्राप्त कर सकते हैं । इस प्रकार ये तीनों देवः परमेश्वरी सत्ता के ये तीनों रूप, जब हमारी वृद्धि एवं समुन्नति में संलग्न हो जायेंगे, तब संसार की कोई शक्ति हमें नीचा नहीं दिखा सकेगी, क्षतिग्रस्त या विनष्ट नहीं कर सकेगी । अन्यथा मनुष्य तो मर्त्य है, मरणधर्मा है, इन देवों से यदि वह शक्ति और सन्देश नहीं लेगा, तो कोई भी बाह्य या आन्तरिक रिपु उसे धर दबोचेगा और प्रहारों से जर्जर करके विनष्ट कर डालेगा ।

-वेद मंजरी से

---

१. घा घ । छान्दस दीर्घ । २. रिष हिंसायम् ३. हि गतौ वृद्धौ च ।

www.thearyasamaj.org

[चिंतनशील मनुष्यों को जो विषय परोक्ष होने या वश में नहीं होने के कारण जो विषय मुख्यतः सताते रहते हैं, उनमें आत्मा,परमात्मा, सृष्टि की उत्पत्ति, ज्ञान का प्रारम्भ, मुक्ति और उसके साधन, सुख-दुःख की समस्या मुख्य है । इन विषयों पर चर्चा का सर्वोत्तम भण्डार वैदिक वाङ्मय में मिलता है । आर्य जगत के स्वनामधन्य चिंतक पंडित चमूपतिजी ने ...अपनी लौह लेखनी इस विषय पर चलाई है-उसका प्रथम प्रसून समर्पित है । सं०]

"आत्मा"

-पं. चमूपति एम.ए.

मैं क्या हूँ?:

पुराना प्रश्न है-मैं क्या हूँ? यह प्रश्न धर्म ने किया है, तर्क ने किया है और विज्ञान ने भी किया है। उपनिषद् में आत्मा को 'प्रतिबोधविदितम्' कहा है, कोई बोध हो उसमें बोधवाले का बोध साथ लेना रहता है। मैं देखता हूँ- इसमें देखने के साथ 'मैं' का भाव भी है। यह वृक्ष है- मैं न होऊँ तो वृक्ष के होने की साक्षी क्या? सब साक्षियों में अपनी साक्षी का सहभाव हैं । प्रत्येक चेष्टा अपनी चेष्टा होती है। प्रत्येक प्रत्यय (Cognition) अपना प्रत्यय (Cognition) होता है। इसी 'अपना' वा 'आप' को संस्कृत में आत्मा कहते हैं।

ऋग्वेद मन्त्र १, सूक्त १६४, मन्त्र ३७ में यह पहेली प्रस्तुत आत्मा के लिंग की है-

न विजानामि यदि वेदमस्मि निण्यः सन्नद्धो मनसा चरामि।

प्रयत्न ज्ञान:

अर्थ- मैं नहीं जानता, क्या मैं यही हूँ (जो दिखता हूँ अर्थात् शरीर) ? मैं तो सन्नद्ध (प्रयत्न के लिए उद्यत) होकर मनसा **मनन**-शक्ति (न्याय-दर्शन के शब्दों में ज्ञान) द्वारा **चरामि** गति करता हूँ।

शरीर जड़ होने से न स्वयं प्रयत्नवान् है न ज्ञानवान्। न ही उसमें स्वतन्त्र, ज्ञानपूर्वक गति (मनसा चरणम्) करने का सामर्थ्य है।

इसके विपरीत आत्मा-

अपाङ् प्राङेति स्वधया गृभीतोऽमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः। -ऋ. १।१६४।३८

इच्छा-द्वेष:

स्वयं अमरण-धर्मा है, परन्तु मरण धर्मा शरीर के साथ एक-स्थानी होकर (स्वधया) अपनी इच्छा से जकड़ा हुआ किसी वस्तु की ओर जाता और किसी वस्तु से परे हटता है, अर्थात् इसमें **राग** और **द्वेष** का

www.thearyasamaj.org

भाव है। लोहा भी जड़ चुम्बक की ओर खिंचता है, परन्तु उस खिंचने में उसकी अपनी इच्छा नहीं होती; इच्छा हो तो कभी न भी खिंचे। आत्मा में राग और द्वेष की शक्ति है, जिसका विकास और प्रयोग वह स्वतन्त्रता से कर सकता है, जो चुम्बक अथवा लोहा नहीं कर सकता। इससे सिद्ध हुआ कि राग और द्वेष आत्मा के ही चिह्न हैं।

सुख-दुःखः

इच्छा और द्वेष सुख-दुःख का फल है। जिस वस्तु से सुख हो उसकी इच्छा होती है, जिससे दुःख हो उससे द्वेष होता है। सुख-दुःख शरीर-मात्र के ज्ञापक नहीं हो सकते। अचेतन को सुख-दुःख का भान क्या?

ऋ. १।१६४।१ में आत्मा को **अश्नः** अर्थात् सुख-दुःख-भोक्ता कहा है।

इस प्रकार उपरिलिखित तीन मन्त्रों में आत्मा के छः लिंग बताए गए -

सुखदुः खेच्छाद्वेषप्रयत्नज्ञानानि आत्मनो लिङ्गम्। —न्याय.

अन्य लिङ्गः

ये लिङ्ग वे हैं जिनमें सदा आत्मा का संकल्प साथ रहता है। संकल्प नहीं तो सहसा न दुःख होता है न सुख, न राग न द्वेष, न प्रयत्न न ज्ञान। मन का संयोग न होने मात्र से ही ये लिङ्ग सिद्ध नहीं होते। इन लिङ्गों के अतिरिक्त कुछ लिङ्ग ऐसे हैं जो आत्मा के होने मात्र से स्वतः- बिना मनोयोग-सिद्ध होते हैं। इनका वर्णन अथर्ववेद के निम्नलिखित मन्त्र में आया है-

यदेजति पतति यच्च तिष्ठति प्राणदप्राणन्निमिषच्च यद्भुवत्।
तद्दाधार पृथिवीं विश्वरूपं तत्संभूय भवत्येकमेव।। —१०।८।११

जो (भुवत्) अपनी सत्तामात्र से कंपन, पतन, ठहराव (गति), प्राण लेना, न लेना (प्राणापान), आँख झपकाना (निमेषोन्मेष) आदि चेष्टाएं करता है, उसने (विश्वरूपम्) सर्वेन्द्रिय प्रत्यय वाले (रूप्यते प्रतीयत इतिरूपम्) पार्थिव शरीर का धारण किया है और जिसमें उन प्रत्ययों की संभूति होकर सब ज्ञान एक हो जाता है (इन्द्रियान्तर्विकारः)।

इस मन्त्र में वैशेषिकदर्शन-कथित **प्राणापान, निमेषोन्मेष, गति, इन्द्रियान्तर्विकार**- इन लिङ्गों का वर्णन किया हैं।

इन्द्रियों के प्रत्ययों का एकीकरणः

यही नहीं, न्यायसूत्र **सव्यदृष्टस्येतराभिज्ञानात्** (बाईं आँख का देखा हुआ दाईं आँख से पहचाना जाता है) का भी समावेश इस मन्त्र में 'संभूय' शब्द में समझना चाहिए।

www.thearyasamaj.org

इसी विषय को ऋ.१।१६५।१५ मे अधिक स्पष्ट किया है, यथा-

साकञ्जानां सप्तथमाहुरेकजं षळिद् यमा ऋषयो देवजा इति।

सात प्रकार का एकसाथ ज्ञान देने वाली इन्द्रियों (दो कान, दो नासिकाएँ, दो नेत्र, एक मुख) को, जिनमें से ६ (कान, नथुने, नेत्र) यम (जोड़े) हैं, एक ज्ञान-साधन बनाकर प्रकट होने वाले को (आत्मा) कहते हैं।

जिस बात को वेद ने स्पष्ट खोलकर कहा था, उसी को दर्शनकार ने सूत्र बनाकर कहा- यदि एक पदार्थ को दो बार देंखे और पहली बार देखते समय एक आँख विकृत हो और दूसरी बार देखते समय दूसरी, तो एक आँख का देखा हुआ दूसरी आँख पहचानती है। प्रतीत यह होता है कि आँखों से भिन्न किसी और व्यक्ति ने एक आँख का देखा हुआ सँभाल रखा था, वह अब दूसरी आँख द्वारा स्मरण किया। वही अन्य व्यक्ति **आत्मा** है।

फिर कहा है-

वि यस्तस्तम्भ षळिमा रजांस्यजस्य रूपे किमपि स्विदेकम्। —ऋ.१।१६४।६

अर्थ- जिसने छः (यम) भौतिक इन्द्रियों को अलग-अलग करके ठहरा रखा है, उस अजन्मा आत्मा के ज्ञान में, किसी इन्द्रिय का कोई ज्ञान हो, (अन्य इन्द्रियों द्वारा प्राप्त किये ज्ञान के साथ) एक हो जाता है।

इस मन्त्र में केवल विविध इन्द्रियों के प्रत्ययों का एकीकरण ही नहीं, किन्तु व्यक्तियों के बोध को क्रमबद्ध करने से जाति का ज्ञान (Classification), प्रत्यक्ष (perception),अनुमान (Inference), उपमान (Comparison),शब्दादि प्रमाणों द्वारा प्राप्त सारा ज्ञानकलाप, किसकी विभूति है, यह रहस्य खोला गया है।

ये सब लिंग जीते शरीर में होते हैं, मृत में नहीं।

ये क्रियाएँ स्वतः चलते यन्त्र की नहीं:

प्राण तथा निमेष को कपाटी (Valve) आदि के समान किसी भौतिक यन्त्र-मात्र की क्रिया नहीं कहा जा सकता, क्योंकि यान्त्रिक क्रिया का निरोध स्वयं यन्त्र नहीं कर सकता, परन्तु शरीर की इच्छा होने पर शरीर की उक्त क्रियाओं का निरोध हो सकता है। जभी तो **प्राणत्** के साथ **अप्राणत्** कहा, **एजति** के साथ **तिष्ठति** कहा। यही भाव दर्शनकार ने इन सब चिह्नों को आत्मा के लिङ्ग कहकर व्यक्त किया है। तात्पर्य यह कि इनका अस्तित्व आत्मा के बिना सम्भव नहीं, परन्तु आत्मा इनके बिना भी रहता है। ये लिङ्ग हैं- धर्म नहीं।

शरीर आदि आत्मा नहीं:

वेद ने उपर्युक्त मन्त्रों में आत्मा के ज्ञापन चिह्नों का वर्णन किया है। ये चिह्न केवल शरीर के नहीं

www.thearyasamaj.org

हो सकते। इस ओर प्रश्न द्वारा संकेत तो किया ही था, परन्तु अब स्पष्ट करते हैं-

अस्य वामस्य पलितस्य होतुस्तस्य भ्राता मध्यमो अस्त्यश्नः। —ऋ.१।१६४।१

इस सुन्दर वृद्ध हो जाने वाले दानादनशील शरीर का भर्ता (अनादित्रयी में) मध्यम-स्थानीय भोग-धर्मा **(आत्मा)** है।

शरीर परिणामी है:

शरीर होता दानादनशील है, अर्थात् इसके परमाणु प्रतिक्षण क्षीण होते और उनके स्थान में नये परमाणु आते रहते हैं। इसलिये यह कभी वाम=सुन्दर है और कभी पलित=वृद्ध। वैज्ञानिक लोग बताते हैं कि इस अणु परिवर्तन के कारण मनुष्य का शरीर प्रत्येक ७ से १२ वर्ष के अन्दर सारा-का-सारा नया हो जाता है। जब मेरा शरीर इसी जीवन में इतनी बार सम्पूर्ण बदल जाता है, तो मैं एक कैसे कहूँ? वेद कहता है, भोग-धर्मा शरीर नहीं, कोई और शरीरी है।

मन आत्मा नहीं:

आत्मा न शरीर है और न इन्द्रिय- यह ऊपर के प्रमाणों से स्पष्ट हो गया। मन की गणना भी इन्द्रियों ही में करनी चाहिए, क्योंकि वह भी एक करण है। **तत्संभूय भवत्येकमेव** ने मन को आत्मा न होने दिया, क्योंकि मन **अयुगपत्-ज्ञान** होने से प्रत्ययों की **संभूति** का आधार नहीं हो सकता।

आत्मा नित्य है:

इस प्रकार आत्मा की पृथक् सत्ता सिद्ध हो गई। अब उसके कुछ गुणों का वर्णन किया जाएगा। आत्मा को दार्शनिकों ने सत् और चित् भी कहा है, अर्थात् वह नित्य और ज्ञानधर्मा है। आत्मा की नित्यता में श्रुति भगवती का कथन है-

अमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः। ता शश्वन्ता।। —ऋ.१।१६४।३८

अर्थात् अमरण-धर्मा (आत्मा) मरणधर्मा (शरीर) के साथ एक-स्थानी है और वे दोनों (शरीर और आत्मा) नित्य हैं।

शरीर शश्वत है, पर मर्त्य। आत्मा शश्वत भी है और अमर्त्य भी।

इस विषय का अधिक विस्तार आगे चलकर करेंगे।

आत्मा अल्पज्ञ है:

आत्मा का चित्त् होना ऊपर प्रमाणित हो चुका है। यह ज्ञानी है पर सर्वज्ञ नहीं। न इसका कोई विशेष ज्ञान अवश्य स्थायी है। इसी भाव को सामने रखकर वेद किसी जिज्ञासु के मुख से कहता है-

अचिकित्वांश्चिकितुषश्चिदत्र कवीन् पृच्छामि। —ऋ.१।१६४।६

अर्थ- न जानता हुआ मैं जानने वाले से पूछता हूँ।

१. भ्राता भरतेः। (निरुक्तद्ध)

www.thearyasamaj.org

ज्ञान को आत्मा का लिङ्ग कहने से भी यही अभिप्राय था। आत्मा में ज्ञान और अज्ञान इकट्ठे रहते हैं, अर्थात् किसी विषय का ज्ञान, किसी का अज्ञान।

अणु: आत्मा के सम्बन्ध में अब एक बात और रही, वह यह कि इसका परिमाण क्या है? वेद स्पष्ट कहता है-

बालादेकमणीयस्कमुतैकं नैव दृश्यते। —अ.१०।८।२५

एक (आत्मा) बाल से भी सूक्ष्म (अणु) है, दूसरा (परमात्मा) मापा नहीं जा सकता अर्थात् विभु है।

विभु और मध्यम के दोष:

परिमाण तीन प्रकार के माने जा सकते हैं- विभु, मध्यम और अणु। विभु जो सर्वत्र हो, मध्यम जो शरीरमात्र में व्यापक हो, अणु छोटे-से-छोटा। कौन-सा शरीर किस आत्मा का है, इसका निश्चय विभु होने की अवस्था में नहीं हो सकता, क्योंकि सब विभु सब शरीरों में होंगे। ऐसी अवस्था में सब आत्माओं का सब शरीरों से सम्बन्ध क्यों नहीं? सब मनों, सब इन्द्रियों से प्रत्येक विभु का संयोग होना चाहिए। विपक्षी कहता है, पूर्व-जन्म के कर्मों के-फल-रूप में प्रत्येक विभु आत्मा, शरीरविशेष से सम्बद्ध होता है, दूसरे शरीरों से उसका सम्बन्ध नहीं होता। इस अदृष्ट में विशेष को कारण कहते हैं जिसकी कल्पना अणु-पक्ष में नहीं करनी पड़ती। विभु-पक्ष में कल्पना-गौरव है। इसलिए यह पक्ष त्याज्य है। मध्यम हो तो प्रत्येक शरीर के साथ इसका परिमाण बदलेगा, अर्थात् जीव का अपना परिमाण कोई न रहेगा। जिस शरीर में जाएगा, उसी का परिमाण इसका परिमाण बन जाएगा; और जिस पदार्थ का परिमाण बदले वह विनाशी होता है- यह आपत्ति आएगी। अणु होने में इन दोषों में से किसी की सम्भावना नहीं। अणु छोटे-से-छोटे शरीर में चला जाएगा और अपनी शक्तियों से दीप की न्याईं अपने से बड़े शरीर का द्योतन और अधिष्ठान करेगा। इस विषय का विशेष विस्तार वेदान्त दर्शन २।३-२१-२८ में किया गया है।

सार

लिङ्ग

जीते शरीर में कुछ ऐसी चेष्टाएँ होती हैं, जो जड़ शरीर नहीं कर सकते, जैसे **सुख-दु:ख** की अनुभूति, **इच्छा, द्वेष, प्रयत्न** और **ज्ञान**। इन्हीं को न्यायदर्शनकार ने आत्मा के लिङ्ग कहा हैं। वैशेषिककार ने इनके अतिरिक्त **प्राणापान, निमेषोन्मेष, गति, इन्द्रियान्तर्विकार** (अर्थात् एक इन्द्रिय यथा आँख के अनुभव से दूसरे इन्द्रिय यथा रसना में विकार होना, जैसे खट्टे पदार्थ के देखने मात्र से मुँह में पानी आना)-ये भी आत्मा के लिङ्ग कहे हैं। जब तक शरीर में आत्मा है तब तक ये लिङ्ग रहते हैं; आत्मा न हो तो ये भी नहीं होते। अत: ये इस शरीर से भिन्न आत्मा के चिह्न हैं। इन्ही लिङ्गों को वेद में **अशन:** (ऋ.

www.thearyasamaj.org

१।१६४।१) सुख-दु:ख-भोक्ता, **अपाङ् प्राङेति** (ऋ.१।१६४।३८) किसी वस्तु की ओर जाता है (इच्दा), किसी से दूर (द्वेष), **सन्नद्धो मनसा चरामि** (ऋ. १।१६४।३७) प्रयत्नवान् होकर ज्ञानपूर्वक विचरता हूँ, **प्राणत् अप्राणत्** प्राण लेता है और नहीं लेता, **निमिषत्** आँख झपकाता है, **एजति पतति तिष्ठति** काँपता है, गिरता है, ठहरता है, **विश्वरूपं संभूय भवत्येकमेव** सारे इन्द्रिय-जन्य बोधों का एकीकरण कर एक बोधाधार है (अ.१०।८।११)-इन शब्दों में कहा गया है। इन लिङ्गों के समान चेष्टाएँ भौतिक पदार्थों में भी पाई जाती हैं। Air-pump की कपाटी फेफड़े की भाँति वायु को धकेलती रहती है। लोहा चुम्बक की ओर वैसे ही खिंचता है, जैसे आत्मा अपने प्रिय की ओर, परन्तु इन क्रियाओं में आत्मा-जैसी स्वतन्त्रता या स्वेच्दा नहीं कि जब चाहा प्राण न लिया, जिसकी ओर आज खिंचे, कल उससे दूर भी हट गए। इस प्रकार यह लिङ्ग आत्मा की अभौतिक सत्ता को जताते हैं।

अपरिणामी:

शरीर तो प्रत्येक ७वें से १२वें वर्ष के अन्दर सम्पूर्ण बदल जाता है। तो वह स्थिर व्यक्ति कौन है जो इस बदलते शरीरों में अपरिणामी रहता है? वेद ने (ऋ.१।१६४।१ में) शरीर को कभी **वाम**=सुन्दर और कभी **पलित**=वृद्ध कहा है, क्योंकि यह **होता**=दानादनशील है- परमाणुओं को खींचता तथा निकालता रहता है। इसका **भ्राता**=भरणकर्ता भोगधर्मा आत्मा हैं

अमर्त्य:

आत्मा के गुण हैं **सत्** और **चित्** अर्थात् नित्यता और ज्ञान। वेद (ऋ.१।१६४।३८ में) शरीर और आत्मा को **शश्वन्ता**=नित्य कहता है, परन्तु फिर वहीं **अमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः** कहकर स्पष्ट कर दिया है कि शरीर (प्रकृतिरूप में) नित्य है पर **मर्त्य**=मरण-धर्मा है, परन्तु आत्मा नित्य भी है और **अमर्त्य** भी।

अल्पज्ञः आत्मा का धर्म ज्ञान है, परन्तु वह ज्ञान शक्तिमात्र है। किसी विशेष विषय का ज्ञान प्रयत्न से आता है। **अचिकित्वांश्चिकितुषः...पृच्छामि** (ऋ.१।१६४।६) **'मैं अज्ञानी ज्ञानियों से पूछता हूँ'**-यही जीव की अल्पज्ञता हैं

अणु:

जीवन का परिमाण अणु है। वेद कहता है-**बालादेकमणीयस्कं** (अ.१०।८।२५) एक बाल से भी सूक्ष्म है। विभु हो तो किस शरीर का कौन आत्मा है, इसका निश्चय न होगा। एक शरीर से एक ही आत्मा का सम्बन्ध क्यों हो, इसका लिङ्ग नियामक कारण नहीं होगा, क्योंकि सब विभु सब शरीरों में होंगे। मध्यम हो तो प्रत्येक शरीर के साथ इसका परिमाण बदलेगा और परिमाण बदलनेवाला विनाशी होता है। इससे अनित्यता का दोष आएगा। इसलिए अणु होना ही युक्तियुक्त है।

www.thearyasamaj.org

गतांक से आगे

आओ अपने घर चलें

(सत्यानन्द वेदवागीश)

ईश्वर अजन्मा है-ईश्वर का कभी जन्म नहीं होता है, वह जन्मरहित है । जन्म लेने का अर्थ है- किसी माता के गर्भाशय में निर्मित होने के बाद उसका गर्भाशय से बाहर प्रकट होना । यह उसके लिए घटित होता है, जो गर्भाशय में हो और उसके बाहर न हो । सो यह जीवात्मा के लिये सम्भव है, परमात्मा के लिये नहीं । परमात्मा तो सर्वत्र विद्यमान है । वह गर्भाशय में भी और बाहर भी रहता है ।

वेद में कहा है-"**अजायमानो बहुधा विजायते**" (य.३१.१९)-वह परमेश्वर कभी भी जन्म न लेता हुआ, बहुत प्रकारसे अन्य पदार्थों को जन्म देता है- प्रकट करता है । विजायते=जन्म देता है- प्रकट करता है। "**जनीँ प्रादुर्भावे**"(दि.४०)धातु अकर्मक है । किन्तु उसके साथ वि उपसर्ग लग जाने से वह सकर्मक हो गई। "अकर्मका अपि धातवः सोपसर्गाः सकर्मता भवन्ति"-अकर्मक धातु भी उपसर्गो के योग से सकर्मक हो जाती है । जैसे "भू" धातु अकर्मक है, किन्तु अनु उपसर्ग के योग से वह सकर्मक हो जाती है । जैसे सुखमनुभवति, दु:खमनुभवति । स्था (ष्ठा) धातु अकर्मक है, किन्तु उप उपसर्ग के योग से सकर्मक प्रयुक्त होती हैं । जैसे "ऐन्द्रया गार्हपत्यमुपतिष्ठते"'अर्थी राजानमुपतिष्ठते' । वैसे वि उपसर्ग के योग से जनीँ धातु सकर्मक हो गई । सकर्मक 'विजनीँ' के प्रयोग बहुत्र प्रयुक्त हुए है । जैसे-"भासी भासान्! व्यजायत" भासी ने भास को जन्म दिया । (वा.रा. अर.१४.१८) । "श्यैनी श्येनांश्च गृध्रांश्च व्यजायत सुतेजसः" (वा.रा. अर.१४.१९)-श्येनीने तेजस्वी श्येनों को और गृध्रों को उत्पन्न किया । "शुकीनतां विजज्ञे तुं" (वा.रा. अर.१४.२०)-शुकी ने नता को जन्म दिया । इससे स्पष्ट है कि वेद के 'अजायमानो बहुधा विजयते' (य.३१.१९) में परमेश्वर को अजन्मा बताया है ।

एक बड़ी भ्रान्ति ईश्वर के विषयों में यह है कि वह जगत् के उद्धार के लिये अथवा पापियों के विनाश के लिये जन्म लेता है अर्थात् ईश्वरका अवतार होता है । जो ईश्वर इस विशालति विशाल खरबों आकाशगङ्गाओं और उनमें वर्तमान खरबों-नीलों सूर्य-ग्रह आदि महापिण्डों का रचयिता और यथा समय प्रलयकर्ता है, वह एक क्षुद्र राक्षस आदि के नाश के लिये नव शरीर धारण करेगा ? वह तो रावण, कंस आदि के शरीरों में भी सर्वदा विद्यमान रहता है । एक क्षण में उनका उच्छेद करन में समर्थ है ।

यदि रावण आदि के नाश के लिए विष्णु ने-ईश्वर ने राम के रूप में जन्म ग्रहण किया अर्थात् राम रूप में ईश्वरावतार हुआ । तो ऐसा मानने वालों के मत में रामजन्म से पूर्व ईश्वर कोई नर जन्म नहीं होना चाहिये । किन्तु वाल्मीकीय रामायण से स्पष्ट है कि श्रीराम के पूर्व में भी जन्म हुए थे । सीता के अपहरण के बाद शोक विह्वल राम ने अपने अनुज लक्ष्मण से कहा था-"पूर्वं मया नूनमभी प्सितानि पापानि कर्माण्यसकृत् कृतानि । तत्रायमद्यापतितो विपाको दु:खेन दु:खं यदहं विशामि" राज्यप्रणाशः स्वजनै र्वियोगः पितुर्विनाशो जननी वियोगः । सर्वाणि में लक्ष्मण शोकवेगमापूरयन्ति प्रविचिन्तितानि ।। सर्वं तु

www.thearyasamaj.org

दु:खं मम लक्ष्मणेदं शान्तं शरीरे वनमेत्य क्लेशम् । सीतावियोगात् पुनरप्युदीर्णं काष्ठैरिवाग्निः सहसोपदीप्तः।। (वा.रा. अर.६३.४-६)-हे लक्ष्मण ! निश्चय ही मैंने पूर्व जन्मों में कोई पापकर्म अनेक बार किये थे, जिनका फल मुझे इस जन्म में मिल रहा है, कि मैं एक दु:ख से फिर दूसरे दु:ख को भोग रहा हूँ । पहिले राज्यप्राप्ति न होने का दु:ख, फिर अपने प्रियजनों से वियोग का दु:ख, पिताजी की मृत्यु रूपी दु:ख और फिर अपनी माता से दूर रहने का दु:ख । ये सब दु:ख मेरे शोक को बढ़ाते थे । किन्तु वन में आकर रहने के बाद ये दु:ख शान्त हो गये थे । किन्तु सीता के अपहरण के बाद सीतावियोग जन्य दु:ख से मेरा शोक वैसे ही बढ़ गया है, जैसे अग्नि में लकड़ी पड़ जाने से अग्नि और भड़क जाती है । फिर राक्षसों के साथ युद्ध के समय जब लक्ष्मण मूर्छित हो गये, तब राम के मुख से ये वचन निकले-"किं मया दुष्कृतं कर्म कृतमन्यत्र जन्मनि । येन मे धार्मिको भ्राता निहतश्चाग्रत: स्थित: (वा.रा. युद्ध १०१।१९-२०) मैंने पूर्व जन्म में कौनसा पाप किया था कि जिसके कारण आज मेरा धार्मिक भाई लक्ष्मण मृतावस्था में मेरे सामने पड़ा है । इससे स्पष्ट होता है कि श्रीराम भी मनुष्य ही थे, उनके भी अन्य मनुष्यों के समान अनेक जन्म हुए थे और वे ईश्वर के अवतार नहीं थे ।

इसी प्रकार श्रीकृष्ण भी मनुष्य थे और उनके भी पहिले अनेक जन्म हुए थे । गीता में कहा है-"बहुनि में व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन" (गी.४.५)-हे अर्जुन ! इस जन्म से पूर्व भी मेरे बहुत से जन्म बीत चुके हैं और तेरे भी बहुत से जन्म हुए हैं ।

इस विवेचन से स्पष्ट है कि ईश्वर का कोई अवतार नहीं होता है अर्थात् वह किसी कारण से जन्म नहीं लेता है । वह अजन्मा है ।

यहाँ एक प्रश्न उठता है कि गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं-"यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्" (गी.४.७) अर्थात् हे अर्जुन ! जब जब धर्म की हानि और अधर्म की बढ़ती होती है, तब तब मैं अपने आप को उत्पन्न करता हूँ, अर्थात् शरीर धारण करता हूँ ।" क्या यह बात सत्य नहीं है ? इस पर महामनीषी स्वामी दयानन्द सरस्वती का लेख है-"यह बात वेद विरूद्ध होने से प्रमाण नहीं और ऐसा हो सकता है कि श्रीकृष्ण धर्मात्मा और धर्म की रक्षा करना चाहते थे, कि मैं युग युग में जन्म लेके श्रेष्ठों की रक्षा और दुष्टों का नाश करूँ, तो कुछ दोष नहीं । क्योंकि "परोपकाराय सतां विभूतय:"-परोपकार के लिये सत्पुरूषों का तन, मन, धन होता है, तथापि इससे श्रीकृष्ण ईश्वर नहीं हो सकते" (सत्यार्थप्रकाश अष्टम समु. पृ.१९०-१९१)

ईश्वर अनन्त है । ईश्वर अन्तरहित है, उसका कोई अन्त नहीं है । अन्त का अर्थ है बन्धन । ईश्वर का कोई बन्धन नहीं है । बन्धन में वह आता है जो किसी में आसक्त होता है । ईश्वर क्योंकि पूर्ण काम है, सो उसे किसी की कामना नहीं है । वह शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध आदि में कभी आसक्त नहीं होता है, अतएव उसे जन्म धारण नहीं करना पड़ता है-जन्मरूप बन्धन में नहीं बंधना पड़ता है-वह अजन्मा है । उससे बड़ा या शक्तिशाली भी कोई नहीं है, जो ईश्वर को बन्धन में डाल सके ।

अन्त का दूसरा अर्थ है सीमा । सो परमेश्वर असीम है–सीमा रहित है अत: वह अनन्त है । यह जो खरबों आकाशगङ्गाओं वाला असीम अनन्त सा प्रतीत होने वाला ब्रह्माण्ड है, वह तो परमेश्वर के एक चतुर्थांश में बनता और बिगड़ता है उससे तिगुनी अधिक ईश्वर की विशालता है सत्ता है–"पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि"(य.३१.३) ईश्वर की अनन्तता के कारण ही उसको पूर्ण रूप से कोई नहीं जान सकता है–"अयं कृत्नुरगृभीत:"(ऋ.८.७९.१) वह महाकर्मा प्रभु किसी के भी द्वारा पूर्ण रूप से ग्रहण नहीं किया जा सकता है–नहीं जाना जा सकता है ।

ईश्वर निर्विकार है । ईश्वर विकारों से रहित है । कविवर भारवि ने कहा है–"कृत: परस्मिन पुरूषे विकार:" (किराता.१७.२३) परम पुरूष परमात्मा में विकारों की सम्भावना कैसे हो सकती है । महाभारत (वन.१३४।१८) में –"एकादश प्राणभृतां विकारा:"–प्राणियों में ग्यारह विकार=दोष पाये जाते हैं । काम, क्रोध, लोभ, भय, शोक, ईर्ष्या, द्वेष, हिंसा, चोरी और स्वार्थ । परमेश्वर में ये तथा अन्य किसी प्रकार का विकार नहीं है । शरीर रहित होने से ईश्वर में ज्वर, क्षुधा, तृषा आदि भी नहीं है । अत: वह निर्विकार है ।

ईश्वर अनादि है । ईश्वर का कोई आदि अर्थात् आरम्भ नहीं है । जो नित्य पदार्थ हैं, उनका कोई आदि आरम्भ नहीं होता । ईश्वर नित्य है, अत: वह आदि रहित है अनादि है । उपनिषद् में कहा है–"अनाद्यनन्तं महत: परं ध्रुवं निचाय्य तं मृत्युमुखात् प्रमुच्यते" (कठ.१.३.१५) अनादि, अनन्त, महत्तम ब्रह्माण्ड में निश्चल रहने वाले परमेश्वर का साक्षात्कार करके, मनुष्य मृत्यु के मुख से छूट जाता है–जन्ममरण के बन्धन से छूटकर मोक्षावस्था को प्राप्त होता है ।

ईश्वर अनुपम है । ईश्वर के बराबर कोई नहीं है । वेद में कहा है–"**न त्वावां अन्यों दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते**" (ऋ.७.३२.२३) हे परमेश्वर ! तुम्हारा जैसा न तो कोई द्युलोक में और पृथिवी लोक में दूसरा कोई न तो अब तक हुआ है और न ही भविष्य में होगा। "**न त्वदन्य: कवितरो न मेधया धीरतरो वरुण स्वधावन्**" (अ.५.११.४) हे अन्न और जल के दाता वरण करने योग्य प्रभो ! आप जैसा महाविद्वान्, मेधावी और महाधैर्यशाली कोई भी दूसरा नहीं है । श्वेताश्वतरोपनिषद् में कहा है–'**न तत्समश्चाप्यधिकश्च दृश्यते**' (६.८) उस परमेश्वर के न तो कोई समान है और न उससे अधिक है ।।

महत्ता विशालता की दृष्टि से देखें तो यह विशालातिविशाल ब्रह्माण्ड भी ईश्वर के मानों चतुर्थांश के बराबर है । ज्ञान की दृष्टि से विचारें तो–"**धामानि वेद भुवनानि विश्वा**" (य.३२.१०) वह प्रभु सब धामों को सबके स्थानों को, नामों को और जन्मों को जानता है । मनुष्य कितना ही बड़ा ज्ञानी और योगी हो जाये, तो भी उसका ज्ञान सीमित ही रहता है । "**स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता**" (श्वेता.३.१९) वह परमात्मा जानने योग्य हर पदार्थ–कर्म–गुण आदि को जानता है, किन्तु उसे पूर्ण रूप से जानने वाला कोई नहीं है । इसीप्रकार पवित्रता, धैर्य, शक्ति, आनन्द, शान्ति आदि की दृष्टि से भी वह अनुपम है–अद्वितीय है।

www.thearyasamaj.org

ईश्वर सर्वाधार है । जड़ चेतन सम्पूर्ण संसार का आधार परमात्मा है । ''स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमाम्'' (ऋ.१०.१२१.१) वह परमेश्वर असंख्य भूमि लोकों और अनगिनत सूर्य आदि को धारण करता है । इतने विशाल पिण्डों को अपनी अपनी कक्षा में व्यवस्थित रूप से संचालित करके धारण करने वाला-उनको न गिरने देने वाला उस ईश्वर के अतिरिक्त और कोई नहीं है । पृथिवी के धारण करने के विषय में कई भ्रातियाँ है । इस विषय में परम मनीषी स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी कृत विवेचना दृष्टव्य है-

प्रश्न -इसका (पृथिवी) का धारण कौन करता है ?'' कोई कहता है-शेष अर्थात् सहस्रफण वाले सर्प के सिर पर पृथिवी है । दूसरा कहता है कि बैल के सींग पर, तीसरा कहता है किसी पर नहीं, चौथा कहता है-वायु के आधार पर, पांचवाँ कहता है- सूर्य के आकर्षण से खेंची हुई अपने ठिकाने पर स्थित, छठा कहता है कि पृथिवी भारी होने से नीचे नीचे आकाश में चली जाती है, इत्यादि में किस बात को सत्य मानें ?

उत्तर- जो शेष सर्प और बैल के सींग पर धरी हुई पृथिवी स्थित बतलाता है, उससे पूछना चाहिये कि सर्प और बैल के माँ-बाप के जन्म समय किस पर थी तथा सर्प और बैल आदि किस पर ? बैल वाले मुसलमान तो चुप ही कर जायेंगे, परन्तु सर्प वाले कहेंगे कि सर्प कूर्म पर, कूर्म जल पर, जल अग्नि पर, अग्नि वायु पर, और वायु आकाश में ठहरा हे । उनसे पूछना चाहिये किसब किस पर है ? तो अवश्य कहेंगे परमेश्वर पर पर । पर जब उनसे कोई पूछेगा कि शेष और बैल किसका बच्चा है ? कहेंगे (सर्प) कश्यप+कद्रू का और बैल गाय का । कश्यप मरीची(का), मरीची मनु (का), मनु विराट् (का), और विराट् ब्रह्मा का पुत्र (था) । ब्रह्मा आदि सृष्टि काथा। जब शेष का जन्म न हुआ था, उसके पहिले पाँच पीढ़ी हो चुकी है, तब किसने धारण किया था ?अर्थात् कश्यप के जन्म समय में पृथिवी किस पर थी तो ''तेरी चुप मेरी भी चुप'' और लड़ने लग जायेंगे । इसका सच्चा अभिप्राय यह है, कि जो 'बाकी' रहता है, उसको शेष कहते हैं । सो किसी कवि ने 'शेषाधारा पृथिवी त्युक्तम्' ऐसा कहा कि शेष के आधार पृथिवी है । दूसरे ने उसके अभिप्राय को न समझकर सर्प की मिथ्या कल्पना कर ली । परन्तु, जिस लिये परमेश्वर उत्पत्ति और प्रलय से बाकी अर्थात् पृथक रहता है, इसी से उसको 'शेष' कहते हैं और उसी के आधार पृथिवी है । ''सत्येनोत्तभिता भूमिः (ऋ.१०.८५.१)-(सत्य) अर्थात् जो त्रैकालाबाध्य जिसका कभी नाश नहीं होता, उस परमेश्वर ने भूमि आदित्य और सब लोकों का धारण किया है । ''उक्षा दाधार पृथिवीमुतद्याम्'' । इसी उक्षा शब्द को देखकर किसी ने बैल का ग्रहण किया होगा । क्योंकि उक्षा बैल का भी नाम है, परन्तु उस मूढ को यह विदित न हुआ कि इतने बड़े भूगोल को धारण करने का सामर्थ्य बैल में कहाँ से आवेगा (इसलिये उक्षा, वर्षा द्वारा भूगोल के सेचन करने से सूर्य का नाम है । उसने अपने आकर्षण से पृथिवी का धारण किया है । परन्तु सूर्यादि का धारण करने वाला बिना परमेश्वर के दूसरा कोई भी नहीं है ।

www.thearyasamaj.org

प्रश्न- इतने बड़े भूगोलों को परमेश्वर कैसे धारण कर सकता होगा।

उत्तर-जैसे अनन्त आकाश के सामने बड़े-बड़े भूगोल कुछ भी अर्थात् समुन्द्र के आगे जल के छोटे-छोटे कण के तुल्य भी नहीं हैं । वैसे अनन्त परमेश्वर के सामने असंख्यात लोक एवं परमाणु के तुल्य भी नहीं कह सकते । वह बाहर भीतर सर्वत्र व्यापक, अर्थात् ''विभू: प्रजासु'' यह यजुर्वेद (३२.८) का वचन है । वह परमात्मा सब प्रजाओं में व्यापक होकर सबका धारण कर रहा है ।

जो वह ईसाई, मुसलमान, पुराणियों के कथनानुसार विभू न होता तो इस सब सृष्टि का धारण कभी न कर सकता । क्योंकि बिना प्राप्ति के किसी को कोई धारण नहीं कर सकता । कोई कहे किये सब लोक परस्पर आकर्षण से धारित होंगे, पुन: परमेश्वर के धारण करने की क्या अपेक्षा है ? उनको यह उत्तर देना चाहिये, कि यह सृष्टि अनन्त हे वा सान्त ? जो अनन्त कहें सो आकार वाली वस्तु अनन्त कभी नहीं हो सकती । और जो सान्त कहे तो उनके पर भाग सीमा अर्थात् जिसके परे कोई भी दूसरा लोक नहीं है, वहाँ किसके आकर्षण से धारण होगा? जैसे समष्टि और व्यष्टि अर्थात् जब सब समुदाय का नाम ''वन'' रखते हैं , तो समष्टि कहाता है और एक एक वृक्षादि की भिन्न भिन्न गणना करें तो व्यष्टि कहाता है, वैसे सब भूगोलों को समष्टि गिनकर जगत कहें तो सब जगत् का धारण और आकर्षण का कर्त्ता बिना परमेश्वर के कोई भी नहीं ।'' (सत्यार्थप्रकाश अष्टम समुल्लास पृष्ठ २२७-२२८)

ईश्वर सर्वेश्वर है । परमात्मा सब चेतन जड़ जगत् मात्र का ईश्वर है । ''य ईष्टे सर्वैश्वर्यवान् वर्त्तते स ईश्वर:'' जिसका सत्य विचार-शील-ज्ञान और अनन्त ऐश्वर्य है इससे उस परमात्मा का नाम ईश्वर है।'' (सत्यार्थप्रकाश प्रथम समुल्लास, पृष्ठ १४) ''विश्वस्यैकं परिवेष्टितारमीशं तं ज्ञात्वा अमृता भवन्ति (श्वेता.३.७) समस्त जगत् को सब ओर से घेरे हुए ईश= ईश्वर को जानकर-उसका साक्षात्कार करके मनुष्य अमर हो जाते हैं । ''सर्वस्य प्रभुमीशानं सर्वस्य शरणं बृहत्'' (श्वेता.३.१७) सबके प्रभु ईशान= ईश्वर को जो कि सबका महत्तम आश्रय है, उसे ही ध्यानी भजते हैं। वह परमात्मा ईश्वरवाच्य राजाओं का तथा सिद्धिप्राप्त योगियों का भी ईश्वर है-परम ईश्वर है-महेश्वर है-''तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमं च दैवतम्। पतिं पतीनां परमं परस्ताद् विदाम देवं भुवनेशमीड्यम्''(श्वेता.६.७.) उस ईश्वरों के भी परम ईश्वर महेश्वर को, देवताओं के भी परम देवता को और स्वामियों के परम स्वामी और देवाधिदेव तथा स्तुति करने योग्य सब भुवनों के परमेशप्रभु को हम पूर्ण सामर्थ्य प्राप्त करें ।।

ईश्वर सर्वव्यापक है । परमात्मा समस्त उत्पन्न और प्रसिद्ध परमाणु और जीवात्माओं में भी व्याप्त है । ईश्वर व्यापक है और समस्त जड़ चेतन पदार्थ व्याप्य हैं । वेद में कहा है-''तस्मिन्निदं सं च विचैति सर्वं स ओत: प्रोतश्च विभू: प्रजासु'' (य.३२.८) । उसी परमेश्वर में यह समस्त जगत् बनता और बिगड़ता है। वह इस संसार की जड़ चेतन प्रजाओं में उनके कण-कण में ओत प्रोत है ।

गतांक से आगे

आर्यसमाज के स्वर्णिम सिद्धान्त

सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग

सत्य के ग्रहण करने और सत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए ।

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम् ।

इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि ।। -यजु. १।५

हे व्रतों के पालक स्वामिन् ! मैं व्रत का आचरण करने लगा हूँ । मुझे शक्ति दो कि मैं अपने व्रत का पालन कर सकूँ । मेरा व्रत यह है कि मैं असत्य भाषण को छोड़कर सत्य को ग्रहण करता हूं।

यह नियम आर्यसमाज की शोभा है । जो बात सत्य, प्रत्यक्षादि प्रमाणों से सिद्ध युक्तियुक्त, सृष्टिक्रमाविरूद्ध और आत्मानुकूल हो उसे ग्रहण करने के लिए और इसके विपरीत को छोड़ने के लिये सदा तैयार रहना चाहिए । आर्य को सत्य का अन्वेषक होना चाहिए । और जब उसे पता चल जाए कि कोई बात असत्य है तो उसे उसी समय छोड़ देना चाहिए क्योंकि आचरण के बिना ज्ञान किसी काम का नहीं । कभी वस्तु का ज्ञान मात्र चरित्र-निर्माण में सहायक नहीं हो सकता । रावण वेदों का बहुत बड़ा विद्वान् था परन्तु आचरण न करने के कारण वह राक्षस कहलाया, अत: प्रत्येक आर्य का यह कर्त्तव्य है कि वह सत्य को ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने में तत्पर रहे । सत्य जहाँ से प्राप्त हो वहीं से ले लेना चाहिए । मनु महाराज का आदेश है-

विषादप्यमृतं ग्राह्यं बालादपि सुभाषितम् ।

अमित्रादपि सद्वृत्तममेयादपि काञ्चनम् ।। -मनु० २।२३९

विष से अमृत और बालक से भी उत्तम वचन ले लेना चाहिए । शत्रु से भी सदाचार सीखना और अपवित्र स्थान से भी स्वर्ण ले लेना चाहिए। कहने का तात्पर्य यह कि सत्य के ग्रहण करने में हठ और दुराग्रह कदापि न करना चाहिए ।

ऋषि दयानन्द सत्य के अनन्य प्रेमी थे । वे अपने समस्त जीवन में सत्य का अन्वेषण करते रहे, अत: आर्यसमाज में प्रविष्ट होने वाले प्रत्येक नर-नारी को भी उन्होंने सत्य को अपनाने की शिक्षा दी । क्योंकि-

सत्यं हि परमं बलम् ।

सत्य सबसे बड़ा बल है । वेदों और उपनिषदों में ईश्वर को सत्य कहा गया है । सत्यम्=स, त् और यम् तीनों अक्षरों के योग से बना है । 'स' जीव को कहते हैं, 'त्' ब्रह्माण्ड को और 'यम्' शासक का नाम है। इस प्रकार सत्यम् ईश्वर का नाम इसलिए है क्योंकि वह जीव और जगत् दोनों को शासन में रखता है ।

फिर ऐसे प्रभु को किस प्रकार प्राप्त कर सकते हैं ? इस का उत्तर है-"**तत् सत्ये प्रतिष्ठितम्**" वह ब्रह्म सत्य में प्रतिष्ठित है । सन्त तुलसीदासजी ने भी कहा है-

साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप । जाके हृदय साँच है, वाके हिरदय प्रभु आप ।।

सत्य का आचरण करने से हम प्रभु को प्राप्त कर सकते हैं और सत्य से विमुख होकर हम प्रभु से दूर होते जाते हैं। सम्प्रदायवादियों ने मनुष्य को सत्य से विमुख करके प्रभु पूजा के स्थान पर मनुष्य-पूजा के गढ़े में ऐसा फँसाया है कि वहाँ से त्राण पाना कठिन है । इस विषय में एक छोटा सा दृष्टान्त है । एक व्यक्ति स्वप्न में आकाश की सैर करने पहुँच गया । वहाँ क्या देखता है कि एक व्यक्ति पालकी में बैठा हुआ है और करोड़ों व्यक्ति उसके पीछे नाचते, गाते और बाजा बजाते हुए जलूस निकाल रहे हैं । थोड़ी दूर आगे चलकर उसने एक अन्य व्यक्ति को देखा जो हाथी पर बैठा हुआ थो और करोड़ों मनुष्य उसके सामने सिर झुकाये खड़े थे । थोड़ा और आगे चला तो उसने एक और पुरूष की भव्य सवारी देखी । उसके साथ भी करोड़ों शिष्य विद्यमान थे। ऐसे दृश्यों को देखता हुआ वह आगे बढ़ा और एक झौपड़ी के पास पहुँचा तो क्या देखता है कि एक व्यक्ति जिसके मुखमण्डल पर सहस्रों सूर्यों जैसी आभा है अकेला बैठा है । पूछने पर पता लगा कि ये भव्य जलूस और सवारियाँ हजरत मोहम्मद, यीसू, मसीह और महात्मा गौतम बुद्ध की थी और परमात्मा बेचारा अकेला बैठा हुआ था । इस दृष्टांत का तात्पर्य यह है कि सम्प्रदायवादियों ने अपने-अपने महापुरूषों को ईश्वर से भी ऊँची पदवी दी है। परन्तु आर्यसमाज के चौथे नियम की यह विशेषता है कि यहाँ किसी व्यक्ति को ईश्वर की पदवी नहीं दी गई । मानव-जीवन की उन्नति के लिए सत्य की कसौटी रखी गई है ।

महर्षि दयानन्द गौशाला में गोपाष्टमीः

आर्यसमाज जोधपुर, रातानाड़ा द्वारा संचालित महर्षि दयानन्द गौशाला, मंड़ोर, जोधपुर में कार्तिक शुक्ल अष्टमी मंगलवार ८ नवंबर को गोपाष्टमी महोत्साह मनाई गई। गौशाला के अधिष्ठाता श्री दुर्गादास जी आर्य ने बताया की पूरे वर्षभर गौशाला की गौओं की तन-मन से सेवा करने वाले गोपालों को इस अवसर पर कटोरदान (टिफिन) एवं वस्त्र भेंट किए गए।

भजनोपदेशक श्री केशवदेव जी, शिवगंज ने इस अवसर पर गीतों व व्याख्यान में गौसेवा की महत्ता बताई। श्री दुर्गादास आर्य ने गौरक्षा, गौसेवा और गौसंवर्धन जैसे महत्त्वपूर्ण कार्यों को रेखांकित करने वाले इस पर्व पर गौकरुणानिधि के प्रणेता महर्षि दयानन्द के अनुयायियों-आर्यजनों की अधिकतम सहभागिता की आशा और आवश्यकता बताई। साथ ही गोशाला हेतु तन-मन-धन से सहयोग की अपील की।

www.thearyasamaj.org

सुधार की मध्यम दशा का आरम्भ

(1867 ई. से 1869 ई.)

1867 ई. के अप्रेल मास में हरिद्वार का बड़ा कुम्भ था । देश-भर के साधु-सन्यासी इस मेले में एकत्र होते हैं । हिन्दू जाति की भलाई और बुराई, सुन्दरता और कुरूपता, दोनों का ही स्पष्ट रूप से दिग्दर्शन करना है तो दस-पांच दिन इस विख्यात समारोह की सैर कर लेना पर्याप्त है । हिन्दू जाति श्रद्धामयी है । उस श्रद्धा का कुम्भ के मेले में मानो समुद्र उमड़ पड़ता है । जहां एक ओर ऐसे वृद्ध पुरूष लाठिया टेक कर स्टेशन से धर्मशाला की ओर जाते दिखाई देंगे, जिनकी कमर झुक गई हैं, दांत मुंह को छोड़ भागे हैं, एक पांव यमपुरी की दहलीज पर धरा जा चुका है, वहां दूसरी ओर दूधमुंहे बच्चों को गोद में लिये धूप और प्यास का कष्ट सहन करती हुई असूर्यम्पश्या हिन्दू ललनायें भारत की माताओं के अतुल विश्वास और तप की सूचना देंगी । कुम्भ पर गृहस्थ लोग लाखों की संख्या में एकत्र होकर साधु-सन्तों के दर्शन करते हैं, गंगा के विशुद्ध शीतल जल में स्नान करके अपने को धन्य मानते हैं, और अब तक भी हिन्दूपन जीवित है, इसकी सूचना देते हैं । ऐसे ही मेले भारत की आर्य जाति की मौलिक एकता को सिद्ध करते हैं । भीड़ में दृष्टि उठाकर देखिये, कहीं पंजाबी का साफा दिखाई देता है, तो कहीं लखनऊ के शौकीन की दुपल्ली टोपी में से घुंघराले बाल दृष्टिगोचर होते हैं; कहीं मद्रासी के नंगे सिर पर गोखुर से दुगनी शिखा नजर आती है, तो कहीं नाजुक गुजराती के नाटे शरीर के शिरोभाग पर लाल पगड़ी सुहाती है । सारांश यह कि भारत भर के हिन्दू निवसी एक डोरी में बंधे हुए हैं- कुम्भ के मेले पर अविश्वासी से अविश्वासी हृदय भी इस बात पर विश्वास किये बिना न रहेगा ।

यह तस्वीर का उज्ज्वल पहलू है । अन्धेरा पहलू भी कुछ कम गहरा नहीं है । छल, कपट, आलस्य और स्वार्थ के पुतले बिना ढूंढे ही मिल जायेंगे । भोगमय त्याग, दुराचारमय साधुभाव और हृदय का विरोधी रूप आपको पग-पग पर दिखाई देगा। जो गृहस्थ नहीं हैं, उनके अन्तःपुर में पुत्र, कलत्र; जिनकी आमदनीका कोई साधन नहीं है, उनके डेरों पर हाथी और घोड़;और जो त्यागी कहलाते हैं, उनके सन्दूकों में लाखों के तोड़े; यह सब कुछ बिना विशेष यत्न के ही दीख जायेगा। सरल-हृदय भक्त और भक्तिनों के विश्वास का घात करने वाले भगवा वेशधारी मठेश्वर भिन्न-भिन्न उपायों से अपने इन्द्रिय-सुख की साधना में मग्न दिखाई देंगे । जिसे हिन्दू धर्म की गिरी हुई दशा देखनी हो, वह आंखें खोलकर एक बार हरद्वार के कुम्भ की सैर कर आये । जहां एक ओर कुम्भ पर एकत्र हुआ जन समूह देश-भर के हिन्दुओं की मौलिक एकता को सूचित करता है, वहाँ साथ ही यह हिन्दुओं की नासमझी और अन्धी श्रद्धा में एकता को भी सूचित करता है ।

www.thearyasamaj.org

स्वामी दयानन्द कुम्भ स्नान से कए मास पूर्व ही हरद्वार पहुंच गए, और सप्तस्रोत के पास गंगा की रेती में कुछ छप्पर डालकर मध्य में पाखण्ड-खण्डनी झण्डी गाड़ दी । सप्तस्रोत में खड़े हुए युवक सुधारक के सामने जो परस्पर विरोध उपस्थित हुआ होगा, उसकी कल्पना की जा सकती है । एक ओर संसार में अनूठे हिमालय और भागीरथी का प्राकृतिक चित्र, दूसरी ओर अज्ञान और छल के मानुषिक चमत्कार । क्या यह आश्चर्य और खेद उत्पन्न करने वाला दृश्य नहीं है ? सप्तस्रोत पर खड़े होकर जरा उत्तर की ओर दृष्टि उठाइये । पर्वत के पीछे पर्वत, जंगल के ऊपर जंगल, यही क्रम बराबर चला गया है । यहां तक कि हिमालय की गगनभेदिनी चोटियां चांदी के सदृश चमकते हुए बर्फ के मुकुट में अनतर्धान हो गई हैं । इस चांदीका पिघला हुआ प्रवाह, घाटियों, कन्दराओं और तलहटियों में से होकर हरिद्वार के पास से गुजरता है। जल क्या है,नील मणियों की छविसे प्रतिबिम्बित शुद्धतम अमृत है, जिसकी शीतलता सोने में सुगन्ध के समान है । एक ओर यह मन और तन को प्रसन्न और उन्नत करने वाला दृश्य है, दूसरी ओर स्वार्थ, अज्ञान और दम्भ की लीला से बिगड़ी हुई मनुष्य-प्रकृति। जिसे परमात्मा ने इतना सुन्दर बनाया है, उसे मनुष्य ने कितना बिगाड़ दिया; जिसे मनुष्य नहीं बिगाड़सका, वही सुन्दर है । ईश्वरीय सुन्दरता और मानवीय नीचता के दृश्य देख कर यदि युवक दयानन्द के हृदय में एक उग्र ज्वाला न भड़क उठती तो निःसन्देह वह पाषाणमय सिद्ध होता ।

स्वामी दयानन्द ने मेले पर एकत्र हुए हिन्दू समाज को देखा और सम्पूर्ण समाज को एक ही बीमारी का शिकार पाया । उसने देखा कि क्या शैव,क्या वैष्णव, क्या सन्यासी, क्या वैरागी, सब एक ही धुन में मस्त हैं, सब एक ही लीक के राही हैं । सुधार की प्रारम्भिक दशा में स्वामी जी ने शैवों को वैष्णवों से कुछ ऊंचा ठहराया था, कुम्भ पर देखा कि सब एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं । न वह पूरे ज्ञानी हैं, औरन यह अधिक अज्ञानी है । जो थोड़ा सा साम्प्रदायिक भेद हृदय में विद्यमान था, गंगा के विमल जल से वह भी धुल गया।

कुम्भ के समारोह में शास्त्र-पारंगत स्वामी दयानन्द की प्रसिद्धि शीघ्र ही फैल गई । गृहस्थ और साधु लोग निडर सुधारक के तेजस्वी भाषण सुनने के लिए आने लगे । कई विद्वानों ने योग्यता की परीक्षा कर के उत्सुकता को दूर किया । यहां पहले-पहल स्वामीजी की काशी के प्रसिद्ध स्वामी विशुद्धानन्द जी से मुठभेड़ हुई । विवाद पुरुषसूक्त पर था । स्वामी विशुद्धानन्द जी ने "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्" इत्यादि मन्त्र से ब्राह्मण आदि वर्णों की ब्रह्मा के मुख से उत्पत्ति बतलाई और स्वामी दयनन्द जी ने शब्दार्थ-बल से यह सिद्ध करने का यत्न किया कि इस मन्त्र में ब्राह्मण को मुख से समान कहा है, मुख से उत्पन्न नहीं कहा। काशी के दिग्गज पण्डित के साथ एक युवक साधु की ऐसी बढ़िया टक्कर का जनता पर अवश्य ही प्रभाव हुआ होगा ।

कुम्भ का मेला हो गया। इस मेले में स्वामीजी के डेरे पर कई साधु और शिष्य ठहरे हुए थे । सब के लिए भोजनादि का वहीं प्रबन्ध था । उस समय की रीति के अनुसार संघ के मुखिया साधु को जिस सामग्री की आवश्यकता होती थी, वह स्वामीजी के पास भी इस समय तक विद्यमान थी । मठा-धारियों और महन्तों

www.thearyasamaj.org

की दुर्दशा देख कर स्वामी जी का विशुद्ध हृदय जल पड़ा। उन्हें अपनी थोड़ी सी सामग्री भी बोझल प्रतीत होने लगी। उनके हृदय ने कहा कि यदि त्यागियों की विलासिता का नाश करना है तो पहले स्वयं सर्वत्यागी बनना होगा । धर्म की बिगड़ी हुई दशा का अनुभव करके अपने शरीर पर धारण करने के थोड़े-से कपड़े भी बहुत प्रतीत होने लगे । स्वामी जी को यह संक्षिप्त सामग्री भी कैदखाने की जंजीर प्रतीत होने लगी। गृह-त्यागी दयानन्द ने सर्वस्व-त्याग करने का निश्चय कर लिया ।

डेरे पर जो कुछ भी था, भिखारियों को बांट दिया । एक कौपीन मात्र रख ली, शेष सामग्री दरिद्रों में वितरण कर दी । मलमल का थान और महाभाष्य का ग्रन्थ गुरूजी की सेवा में मथुरा भेज दिया । इस प्रकार सांसारिक वस्तुओं के इस हल्के से बन्धन को काट कर सर्वत्यागी स्वतन्त्र दयानन्द मनुष्य जाति के बन्धनों को काटने के लिए सन्नद्ध हुआ । गंगा के पार, चण्डी के पर्वत के नीचे रेतीले किनारे पर कुछ समय तक तपस्या करके उन्होंने अपने आपको उस महायुद्ध के लिए और भी अधिक तैयार किया, जिसकी ओर भगवान की इच्छा उन्हें खींच ले जा रही थी।

पाठकवृन्द ! यहां सुधार की दूसरी दशा का आरम्भ होता है । सुधारक की दृष्टि अधिक विस्तृत हो गई है, रहे-सहे रूढ़ि के बन्धन भी टूट गए हैं, निसर्ग से ही उज्ज्वल प्रतिभा वास्तविक संसार की घटनाओं से रगड़ खाकर और भी अधिक उज्ज्वल हो उठी है ।

-इन्द्र विद्यावाचस्पति

ऋषि महोत्सव मनाया:

श्रीमती परोपकारिणी सभा द्वारा ऋषि उद्यान अजमेर में महर्षि दयानन्द बलिदान दिवस पर मुख्य आयोजन किया जाता है। देश विदेश के सभी आर्यसमाजों और ऋषि आयोजन किया जाता है। देश विदेश के सभी आर्यसमाजों और ऋषि मिशन में लगी अन्य संस्थाओं द्वारा भी इस अवसर पर कार्यक्रम आयोजित किए गए। आर्यसमाज नागदा (म.प्र.) के मीडिया प्रभारी श्री अग्निवेश पांडेय ने बताया है कि आर्यसमाज द्वारा सेवराम जी की बावड़ी, आर्यसमाज मंदिर पाडल्या पर आयोजित युगप्रवर्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के १३३ में निर्वाण दिवस के उपलक्ष्य में आयोजित कार्यक्रम में यज्ञोपरांत समाज के धर्माचार्य डॉ. पं. लक्ष्मीनारायण सत्यार्थी के अलावा श्री तुलसीराम पाटीदार, श्री दुर्गेश पांचाल, श्री रमेश चंदेल, श्री कमल आर्य, श्री पूनमचंद आर्य, श्री भँवर आर्य आदि ने स्वामी दयानन्द सरस्वती, आर्यसमाज और दीपावली की महत्ता पर प्रकाश डाला। इस अवसर पर आर्यसमाज को विद्युत-सज्जा, दीपों और रंगोली से सजाया गया एवं ६ नवंबर को आर्य परिवारों का दीपावली मिलन समारोह सहभोज के रूप में आयोजित किया गया।

www.thearyasamaj.org

गतांक से आगे

दयानन्द बावनी

(श्री दुलेराय काराणी)

झंडाधारी

आया झंडाधारी, वेद धर्म का उठाया झंडा,
मन्त्र ओम्‌कार तें, जगत्‌ को जगायो है;
पाप–ताप,क्लेश–द्वेष, जोर जुल्म जारिबे को,
कहा मही–मंडल पे, महानल आयो है;
'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्'एक वेदमन्त्र हु तें,
'काराणी' कहत, सारे हिन्द को हिलायो है;
धर्म धारिबे को, आर्यावर्त के उद्धारिबे को,
डूबतों के तारिबे को, दयानन्द आयो है;(२६)

नरसिंह–अवतार

भारत में भया, अनाचार का अपार भार,
हुआ हाहाकार हर्नाकस के हुंकार सा;
धर्म भयो लोप, महापाप को प्रकोप भयो,
उठा चीत्कार प्रह्लाद के पोकार–सा,
'काराणी' कहत चढ़ी आंधी अधर्म की जब;
घेरा चारों ओर, अंधाधुंध अन्धकार–सा,
काले कलिकाल के , कराल लाल खंभ से:दि–
आया दयानन्द , नरसिंह अवतार सा (३०)

पाखण्ड–खण्डन पर .....

अनल पै नीर जैसो, नीर पै समीर जैसो,
जैसो घन तिमिर पै, तरणी को तीर है;
जैसो कंसराज पर, चक्रधर कृष्णचन्द्र,
जैसो न क्षत्रिय में, परसराम वीर है;
'काराणी' कहत, जैसो पहाड़ पे वज्रपात,
जैसो राज रावण पे, राम रणधीर है;
जैसो मृग झुंड पे महान्‌ मृगराज वैसो,
पाखण्ड के पन्थ पर, दयानन्द वीर है;(३१)

www.thearyasamaj.org

तेज का मिनारा

केते महीपतियों को, आर्यत्व की दीनी आन,
केते केते मानिओं के मान को उतारा है;
तेरी अप्रतिम तपश्चर्या की तेजस्धारा,
तेजस्वी चारित्र्य, जैसा शुक्र का सितारा है;
'काराणी' कहत , पाखण्डों के पारावार बीच,
बिरद का बेड़ा तूने पार कर डारा है;
भूले–भटकों को सत् पंथ दिखलाने वाला,
वीर दयानन्द! तू ही तेज का मिनारा है; (३२)

निस्पृहता

उदेपुर–राजन सज्जन सिंह ने एक समय,
स्वामीजी को बात एक बताई इनाम की;
'महर्षि! न कीजे मूर्तिपूजा का विरोध अब,
लीजिए जागीर आप, एकलिंग धाम की;
सारे धर्म–धाम हु के, बना दूँ महंत बड़े,
और भी दिलाऊँ,जायदाद लाख दाम की;
महर्षि कहत'वेदधर्म के विरुद्ध यह,
तुच्छ जायदाद, न हमारे कुछ काम की! (३३)

पाखण्ड–खण्डनी पताका

हरिद्वार धाम कुंभ–मेले के जमेले बीच,
भारत की जनता अपार जब आई है;
मोटेमोटे साधु–संत, संन्यासी महन्त आये,
डेरा–तंबु डारे, केती छावनी छवाई है;
सभा–समूहों में, सप्तसर पर महर्षि ने,
वेद–धर्मोपदेश की, झड़ी बरसाई है;
हिम्मत के हीर, सत्यवीर दयानन्दजी ने,
पाखण्ड–खण्डनी पताका तहाँ चढ़ाई है;(३४)

(क्रमशः)

www.thearyasamaj.org

नेपाल - प्रवास से प्रेरक पत्र

"ओ३म्"

अन्तर्राष्ट्रीय आर्य सम्मेलन,
काठमाण्डो, नेपाल

२०-२२ अक्टु. १६

समादरणीय श्रीयुत,

सादर नमस्ते

* ईश्वर कृपयात्र कुशलं तत्रापि भवतु ।
* सा. आ. प्र. सभा के आमंत्रण पर अ. आ. महा सम्मेलन में भाग लेने हेतु १९ अक्टुम्बर को नेपाल की राजधानी काठमाण्डो पहुंचा । सम्मेलन में भारत के १५-२० राज्यों के हजारों की संख्या में तथा विदेशों से भी सैकड़ों आर्यों ने उत्साह पूर्वक भाग लिया । सभा के अधिकारियों तथा नेपाल के स्थानीय कार्यकर्त्ताओं के परम पुरुषार्थ से कुछ अव्यवस्थाओं को छोड़कर सम्मेलन आशातीत सफल रहा और अविस्मरणीय बन गया, नेपाल में वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार हेतु भूमि अधिग्रहण करके उस पर विशाल भवन बनाकर, बहुआयामी केन्द्र की स्थापना करने की योजना बनायी गयी है, तदर्थ धन राशि भी संग्रह की गयी है ।
* सामान्य रूप से नेपाल के लोगों में सरलता, स्वामिभक्ति, कर्त्तव्य निष्ठा, समर्पण, त्याग, तपस्या आदि विशेष गुण पाये जाते हैं, इन्हीं के कारण आज समस्त भारत में इन्हें अपने घरों, कारखानों, सोसायटियों आदि संस्थानों में आरक्षक के रूप में रखा जाता है । अशिक्षा, निर्धनता, कल्पित देवी-देवताओं की ईश्वर रूप में पूजा, अंधविश्वास पाखण्ड से युक्त निरर्थक-अनर्थक कर्मकाण्डों, छुआ-छूत आदि अनेक प्रकार के दोषों के कारण इस देश का जितना विकास होना चाहिए था, नहीं हो पाया, बल्कि विश्व में एक ही हिन्दू राष्ट्र था, वह भी समाप्त हो गया । यद्यपि भारत की तरह नेपाल विदेशी आक्रान्ताओं के पराधीन नहीं रहा, किन्तु परोक्ष रूप से न केवल पाश्चात्य देशों ने बल्कि भारत ने भी अपने पड़ौसी एक मात्र हिन्दू राष्ट्र की उन्नति करने, इसे सशक्त, समृद्ध बनाने हेतु विशेष प्रयास नहीं किया, बल्कि शोषण ही किया गया । आज चीन, नेपाल को विशेष रूप से सहायता करके, राजनैतिक दृष्टि से अपने पक्ष में करने का प्रयास कर रहा है । जिसके दूरगामी भयंकर दुष्परिणाम होंगे ।
* आज इक्कीसवीं शताब्दी में भी नेपाल में शान्ति, सुख, समृद्धि, स्वर्ग आदि की प्राप्ति के लिए पूजा, भक्ति अर्चना आदि के नाम से अत्यन्त मूर्खता पूर्वक, हिंसक, घिनौनी, क्रूर, आसुरी, पैशाचिक, घृणित परम्परायें प्रचलित हैं, जिनको देख, सुन, पढ़कर हृदय सिहर जाता है । उदाहरण के लिए एक ही दिन में, खुले मैदान में, हजारों की संख्या में मूक भैंस आदि पशुओं की निर्मम गंडासों से हत्या की जाती है, जिसके परिणाम स्वरूप खून की नदियां बह जाती हैं । ऐसे ही अन्य अंध विश्वास, पाखण्ड पूर्वक क्रिया काण्डों को देखकर नई पीढ़ी नास्तिकता, स्वच्छन्दता, भोगपरायणता की ओर अग्रसर होती जा रही है, यही स्थिति भारत की है, नेपाल की क्या बात करें ।

www.thearyasamaj.org

* कुछ उत्साही, आशावादी, पुरुषार्थी, कर्मठ, कार्यकर्त्ताओं को छोड़ देवें, शेष अधिकांश वैदिक धर्म में आस्था रखने वाले आर्य सज्जनों में आर्य संस्कृति के प्रचार-विस्तार-विकास-गुणवत्ता के विषयमें निराशावादी भावना घर कर गयी है । ऐसे व्यक्ति आध्यात्मिक-धार्मिक दृष्टि से ''नास्तिक'' ही कहलाते हैं । और आशावादी ''आस्तिक'' कहलाते हैं । सर्व प्रथम इस निराशावाद को समाप्त करना चाहिए । यह निराशा अकर्मण्यता, उपेक्षा, दोषदर्शन, निन्दा, स्वार्थप्रधानता आदि अवगुणों को उत्पन्न करती हैं । ये निराशावादी स्वयं तो कुछ करते नहीं हैं, अपितु जो उत्साही, त्यागी, तपस्वी, निष्ठावान, समर्पित, कर्मठ कार्यकर्त्ता होते हैं, जो अपने तन-मन-धन सर्वस्व की आहुति देकर, भूखे-प्यासे रहकर निन्दा-अपमान, विरोध-बाधा अनेक प्रकार की प्रतिकूलताओं को प्रसन्नता पूर्वक सहन करते हुवे, दिन रात निष्काम भावना से सर्वहितकारी श्रेष्ठ कार्यों को सम्पन्न करते रहते हैं, उनको हतोत्साहित करते हैं, उनका उपहास करते हैं, उनकी केवल त्रुटियों, न्यूनताओं, भूलों को ही देखते हैं और उन्हीं का सर्वत्र प्रचार करते रहते हैं, ऐसे व्यक्तियों को टीका टिप्पणी, कटाक्ष किये बिना शान्ति नहीं मिलती है। ऐसे निराशावादी=नास्तिक, समाज-संगठन के लिए शत्रुओं से भी कहीं अधिक घातक होते हैं । ऐसे ही आन्तरिक निन्दकों के कारण समाज-संगठन के सक्रिय कार्यकर्त्ता, घबराकर, विवाद-विरोध-झगड़े से बचने के लिए चुपचाप घर में जाकर, निष्क्रिय बन कर बैठ जाते हैं ।
* संगठन को निर्बल, विघटित, शिथिल करके उसे असफल बनाने में एक घातक दुष्प्रवृत्ति यह भी है कि मात्र सुनी-सुनाई, प्रमाणों से असिद्ध, अफवाह रूप में प्रचलित बातों को सही मान लेना तथा इसके भयंकर परिणामों प्रभावों काविचार किये बिना, सर्वत्र प्रचार कर देना,जबकि होना यह चाहिए कि जिस व्यक्ति या संगठन से सम्बन्धित बात हो, उससे पूर्व मिलकर स्पष्टीकरण कर लेवें । अन्यथा अप्रामाणिक मिथ्या बातों का आवेश में आकर अतिशयोक्ति पूर्वक प्रचार करने से, संगठन में परस्पर श्रद्धा, प्रेम, विश्वास, सहयोग में कमी आती है और संगठन के सारे प्रयोजन असफल हो जाते हैं । अत: इस अत्यन्त विनाशक दुष्प्रवृत्ति को समाप्त करना मुख्य कार्य है ।
* संगठन को असफल बनानेमें एक घातक परम्परा यह भी चल रही पड़ी हे कि कोई एक व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह जब तक स्वयं संगठन में अधिकारी बने रहते हैं तब तक तो तन-मन-धन-समय सब कुछ लगाकर अनेक प्रकार के कष्टों को उठाकर भी पर्याप्त कार्य करते हैं किन्तु जिस दिन पद-अधिकार-दायित्व नहीं रहता है तब वे संगठन में रहते हुए भी वर्तमान के कार्य-कर्त्ताओं को सहयोग, समर्थन प्रोत्साहन, शुभकामना, आशीर्वाद, धन्यवाद देने की बात दूर रही, वे नितान्त उपेक्षित, निष्क्रिय, मूक दर्शक बनकर घरों में बैठ जाते हैं, ऐसा प्रतीत होता है कि वे संगठन में है ही नहीं, संगठन से उनका कोई लेना देना नहीं है, कुछ भी कर्त्तव्य शेष नहीं रहा है । बल्कि कुछ तो वर्तमान के कार्यकर्त्ताओं= अधिकारियों का उनकी कार्य शैली का गौण-मुख्य का प्रत्यक्ष वा परोक्ष रूप में विरोध भी करते हैं,यह प्रवृत्ति=परम्परा भी संगठन के लिए महाघातक है, इस दुष्टि प्रवृत्ति को भी समूल नष्ट

www.thearyasamaj.org

करना अति आवश्यक है ।

* हे देवाधिदेव महादेव ! आप अपने कृपाकटाक्ष से हम आर्यों के मन-बुद्धि-अन्त:करण को इतना पवित्र बना दो कि अपने ही नहीं परायों की भी सामान्य त्रुटियों, भूलों, न्यूनताओं, दोषों को देखकर उद्विग्न न हों, बल्कि सहन कर लेवें, अन्यों के गुणों, विशेषताओं यश:, कीर्ती, प्रगति को जानकर मन में प्रसन्न हों। परस्पर एक दूसरे की सहायता करें, बिना ही पद, प्रतिष्ठा, अधिकार, दायित्वों के निष्काम भाव से अपने पूर्ण सामर्थ्यानुसार सामाजिक सर्वहितकारी कार्यों में सर्व प्रकार से सहयोग करते व करवाते रहें, ऐसी श्रद्धा, निष्ठा, त्याग, तप, समर्पण की भावना हमारी आत्मा में भर दो यही वरदान आप से मांग रहे हैं, आशा ही नहीं पूरा विश्वास है कि आप शीघ्र ही इस प्रार्थना को पूरा करेंगे इसी भावना के साथ।

–ज्ञानेश्वरार्य, एम. कॉम. दर्शनाचार्य

एक सन्यासी की डायरी से
ऋषि स्मृति सम्मेलन

(महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास, जोधपुर द्वारा २९ सितम्बर से ०१ अक्टूबर २०१६ तक आयोजित ऋषि स्मृति सम्मेलन में जोधपुर आये स्वामी प्रवासानंद जी महाराज दैनिकी और संस्मरण लिखते हैं, उनकी दैनिकी के प्राप्त अंश इस सम्मेलन के आयोजन के विषय में...)

१५.०९ विशेष १:-

जोधपुर महर्षि स्मृति भवन 14 सितम्बर को पहुंचा, कहा गया कि इतने जल्दी क्यों आये ? विवशता में पुन: यात्रा।.

15.09 से 23.09 से 28.09

जोधपुर से पाली, सुमेरपुर, शिवगंज, सिरोही, स्वरूपगंज, रोहिड़ा, आबूरोड़, पालनपुर, सिद्धपुर तक यात्रा कर फिर जोधपुर आया तो कहा गया, फिर जल्दी आ गए ? तो मैंने वहीं डेरा डाल दिया, सारी व्यवस्था निवासी-आतिथ्य की सर्वोत्तम रही, निवास स्थान परिवर्तित होते रहे, अब हम ७ सन्यासी यहाँ थे।

29.09.2016

आज से उत्सव आरम्भ, श्री महापंडित सत्यानन्द जी वेदवागीश जी के ब्रह्मत्व में महायाज्ञ के साथ इनके बिना ग्रन्थ देखे सभी प्रवचन मौखिक सप्रमाण ग्रन्थ, पृष्ठ संख्या, विवरण के साथ

सरलतम भाषा में होते रहे, और विद्वान् पधारे थे, नहीं, आमंत्रित किये गए थे, नियत समय पर 2 अक्टूबर 2016 को उत्सव समारोहपूर्वक संपन्न हुआ, मास के अंतिम दिन आगामी प्रवासी पत्रिका में 1-2 अक्टूबर 2016 का वर्णन दिया जायेगा। आगामी प्रवासी पत्रिका में दिया जा रहा है।

विशेष 2

महर्षि स्मृति भवन, जहाँ स्वामी दयानंद को जहर दिया गया, यह भवन तत्कालीन दीवान का था, कालांतर में यह राजस्थान के मुख्यमंत्री बरकतउल्ला खां की संपत्ति रहा , एक स्वतंत्र न्यास बना प्राप्त किया गया, सार्वदेशिक-राजस्थान सभा के आधिपत्य में इस सम्बनधी शिलालेख भवन के भीतर सुशोभित है, कृपया यात्रा वहाँ की कर स्वयं देखें, पढ़ें, प्रेरणा लें, सौजन्य प्रदान करें, अपनी ओर से, आपके नाम का शिलालेख भी वहाँ दर्शक पढ़ प्रेरणा लेवें- प्रवासनंद।

विशेष 3

यहाँ मध्य में बिना खम्भे की भव्य यज्ञशाला, एक से अधिक उद्यान, कई भवन बनाये जा रहे हैं- करोड़ों की लागत से जो पूर्ण होने ही वाले हैं- गुरुकुल, सन्यास, वानप्रस्थ आश्रम, यहाँ से 'महर्षि स्मृति प्रकाश' मासिक भी प्रकाशित होता है, सभी अधिकारी राज्य-वंशज, किसी न किसी रूप में- यथासंभव अधिकांश दान स्वयं ही देते हैं, धीरे से नरम शब्दों में दान की अपील भी करते हैं, मिल जाय तो ठीक, नहीं तो स्वयं का उत्तरदायित्व तो है ही, यहाँ बहुत कुछ दर्शनीय है, सबसे बड़ा अन्नक्षेत्र, मुगलों की नजर बचाने को पन्ना धाय (चित्तौड़ की तरह) (वास्तव में गौरा धाय-सं.) अपने आप में उदाहरण अलग ही है, जिसके स्मारक स्वरूप छतरी यहाँ बनी है, मेहरानगढ़ किला, राजपरिवार की समाधियाँ (थड़ा) उम्मेद महल (महाभारतकालीन दृश्य, सूखे में पानी, पानी में सूखा सा दृश्य यहाँ दिखाई देता है), नन्हें राजकुमार (औरंगजेब से छुपाकर महाराजा जसवंतसिंह प्रथम के पुत्र राजकुमार अजीतसिंह-सं.) को गुप्त रूप से पाला गया, बड़ी उम्र में राजा बनाया गया- वीर दुर्गादास द्वारा; जिनकी स्मृति स्वरूप छतरी उज्जैन मध्यप्रदेश में है, इस नगर में लगभम 15 अर्यासमाजें हैं, सभी मिलकर चलते हैं, राजस्थान में राजकीय, तो मध्यप्रदेश में शासकीय शब्द प्रयोग होता है, मंडोर में पुरानी गौशाला श्री दुर्गादास जी वैदिक सम्भालते हैं, जोधपुर, राजस्थान पडौसी देशों से सदा मुकाबले के लिए तैयार! ये है अपना राजपुताना, नाज जिसे हथियारों पर! स्मृति भवन संस्था के सभी अधिकारी सक्रिय, विशेषकर मंत्रीजी, धन्य हो राजस्थान! जोधपुर से हम सातों सन्यासी 3 से 6 अक्टूबर 2016 उत्सव आर्यसमाज, ब्यावर के लिए आये......।।

www.thearyasamaj.org

स्वामी श्रद्धानन्द बलिदान दिवस पर:

(प्रसंग चयन: आर्य किशनलाल गहलोत)

दो युग्मों में चार घटनाएँ स्वामी श्रद्धानन्द महाराज की लेखनी से

पहली दो घटनाएँ उन महानुभावों को (मुख्यत: उन आर्यो को) समर्पित जो अपने स्वजनों को आर्यसमाज से या कि महर्षि दयानन्द सरस्वती से दूर रखते हैं।

घटना १. एक नास्तिक जादूगर:

संवत् १६२३ लगभग। स्वमीजी:-"... काशी में प्रसिद्ध हुआ कि वेद भास्त्र का ज्ञाता बड़ा नास्तिक आया है जिसके दोनों ओर दिन में भी मसालें जलती हैं। जो भी पंडित उससे शास्त्रार्थ करने जाता है उसके तेज से दब जाता है। मुझे भली प्रकार याद है कि माताजी उन दिनों हमें बाहर नहीं जाने देती थीं-इस भय से कि कहीं हम दोनों भाई जादूगर के फंदे में न फंस जायें। पिताजी ने पीछे बताया कि वह प्रसिद्धि अवधूत दयानंद की थी। माताजी को क्या मालूम था कि उनके देहान्त के पीछे उनका प्यारा बेटा उसी जादूगर के उपदेश से प्रभावित होकर उसका अनुयायी बन जायेगा"

घटना २. जिससे बचाया उसी को सौपना पड़ा: ऋषि दयानंद का सत्संग

स्वमीजी: -"१४ श्रावण संवत् १६३६ के दिन स्वामी दयानंद बांसबरेली पधारे। ३ भाद्रपद को चले गए । स्वामीजी महाराज के पहुँचते ही कोतवाल साहब को हुक्म मिला कि पण्डित दयानन्द सरस्वती के व्याख्यानों के अन्दर फिसाद रोकने का बंदोबस्त कर दें। पिताजी स्वयं सभा में गए और स्वामीजी महाराज के व्याख्यानों से ऐसे प्रभावित हुए कि उनके सत्संग में मुझ नास्तिक की संशयनिवृत्ति का उन्हें विश्वास हो गया। रात को घर आते ही मुझे कहा - 'बेटा मुन्शीराम! एक दण्डी संन्यासी आए हैं, बड़े विद्वान् और योगीराज हैं। उनकी वक्तृता सुनकर तुम्हारे संशय दूर हो जायेंगे। कल मेरे साथ चलना। 'उत्तर में कह तो दिया कि चलूंगा परन्तु मन में वही भाव रहा कि केवल संस्कृत जानने वाला साधु बुद्धि की बात क्या करेगा। दूसरे दिन..... अभी दस मिनट की वक्तृता नहीं सुनी थी कि मन में विचार किया- 'यह विचित्र व्यक्ति है कि केवल संस्कृतज्ञ होते हुए ऐसी युक्ति युक्त बातें करता है कि विद्वान् भी दंग हो जायें।' व्याख्यान परमात्मा के निज नाम ओ३म् पर था। वह पहले दिनका आत्मिक आनन्द कभी भूल नहीं सकता।"

(चुम्बक रूप महर्षि की एक वक्तृता से मोहित लौह नास्तिक मुंशीरामजी ब्रह्ममुहूर्त से रात्रि तक और जंगल से लेकर महत्तवपूर्ण वार्ताओं तक महर्षि से चिपके रहने के प्रयास में ही रहे और उनकी नास्तिकता महर्षि के सामने निरूत्तर हुई।अपनी आत्मकथा में स्वामीजी महाराज ने महर्षि के बहुत से प्रेरक प्रसंगों का विवरण दिया है। -सं0)

www.thearyasamaj.org

अगली दो घटनाएँ महर्षि आर्यसमाज से दूर रहने वालों को समर्पित हैं। क्योंकिः–
–व्यश्टि, समष्टि और विश्वकल्याणार्थ आर्यसमाज ही एकमात्र और अंतिम विकल्प है।
–संस्कारकाबीजतोअव य डालो, पता नहीं कब अंकुरितहो धन्य करजाय।

घटना३. आस्तिक - नास्तिक - संवाद : आस्तिकता का बीजारोपण

संवत् १९३६: महर्षि दयानन्द कोई वर और वेद के "ढकोसले" से तिलांजलि दिलाने को तत्पर मुंशीरामजी महर्षि से प्रथमवार्ता के वृतांत से लिखते हैं: "पांचमिनट के प्रश्नोत्तर में ऐसा घिर गया कि जिह्वा पर मुहर बन गई। ... दूसरी बार फिर पूरी तैयारी करके गया, परन्तु परिणाम पूर्ववत् ही निकला । तीसरी बार फिर पूरी तैयारी करके गया, परन्तु मेरे तर्क को फिर पछाड़ मिली । मैनें फिर अन्तिम उत्तर वही दिया –'महाराज! आपकीतर्कना ाक्तिबड़ीप्रबलहै, आपनेमुझे चुपतोकरादिया, परन्तु यह विश्वास नहीं दिलाया कि परमेश्वर की कोई हस्ती है। 'महाराज हँसे , फिर गम्भीर स्वर में कहा, 'देखो, तुमने प्रश्न किए, मैनें उत्तर दिए– यह युक्ति की बात थी। मैनें कब प्रतिज्ञा की थी कि मैं तुम्हारा विश्वास परमेश्वर पर करा दूंगा। तुम्हारा परमेश्वर पर विश्वास उस समय होगा जब वह प्रभु स्वयं तुम्हें विश्वासी बना देंगें। 'अब स्मरण आता है कि नीचे लिखा उपनिषद् वाक्य उन्होंने पढ़ा था–

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैश वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम्।। कठ0 2.2.22"

घटना ४: नास्तिकता का विनाशः आस्तिकता का बीजांकुरण

संवत् १९४१, पौराणिक निस्सारता से नास्तिक बन ब्रह्मसमाजादि आधुनिक मतों में भी भटककर, अंत में सत्यार्थ प्रकाश का गंभीरतापूर्वक स्वाध्याय करते समय मित्र सुन्दरदास जी के आगमन व उनसे मुंशीरामजी (स्वयं) की चर्चा के बारे में स्वामीजी लिखते हैं: "उन्होनें पूछा– 'किस चिन्ता में हैं, कहिए कुछ निश्चय न हुआ? 'मेरी ओर से उत्तर न मिला –'पुनर्जन्म के सिद्धान्त ने फैसला कर दिया, आज मैं सच्चे विश्वास से आर्यसमाज का सभासद् बन सकता हूँ। '....मैं अपने ४० वर्ष के आर्यसामाजिक जीवन में जब जब किसी संशयात्मक व्यक्ति को संशयसागर के किनारे पर पहुँचाकर श्रद्धा और विश्वास की रमणीय वाटिका में विश्राम कराने का साधन बना हूँ तब कई बार मैंने इस प्रकार के आह्लाद का अपने अन्दर अनुभव किया है।....."

सूचनाः आर्यसमाज महर्षि पाणिनि नगर जोधपुर में स्वामी श्रद्धानन्द बलिदान दिवस दिनांक 25 दिसम्बर 2016 को सायं 4 बजे से 5:30 बजे तक मनाया जाएगा। सभी आर्यजन सादर आमंत्रित हैं।

www.thearyasamaj.org

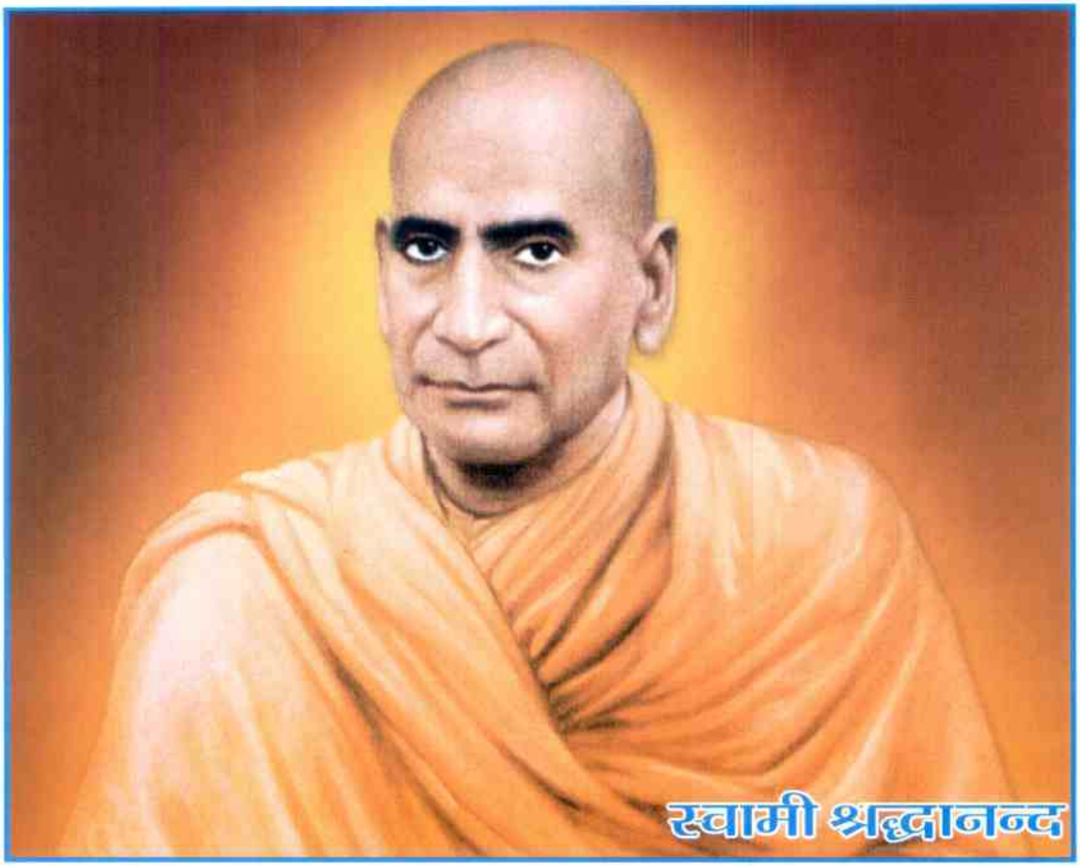

कभी निराश न हो ओ

हे भ्रातृगण ! क्या उस परमेश्वर से विमुख होकर, उसे भूल कर, हम कभी भी अपने उद्देश्य को पूर्ण कर सकते हैं-सोचो और चेतो । अब तक हमने अपने समय को व्यर्थ गंवाया है। अब तक हमने अपने लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए अंधेरे में हाथ-पैर मार-मार कर उन्हें धायल कर दिया। जो शक्तियाँ हमें अपनी रक्षा के लिए मिली थी उन्हें अलग अपने नाश के लिए प्रयोग करते है । अब भी समय है और सदा समय है क्योंकि सबका पितामानुषिक निर्बलताओं से मुक्त न्यायमुक्त दंड से हर समय हम पर हाथ रखता है । बालक हो या युवा अथवा वृद्ध हो प्रत्येक को समय है कि हर समय अपने जीवन का पलटा देकर प्रभु की शरण में आन पड़े क्योंकि यहां से किसी विश्वासी पुरुष को निराश लौटते हुए कभी किसी ने नहीं देखा।

www.thearyasamaj.org

Postal Reg. Jodhpur/434/2015-17

Date Of Posting 9,10-12-2016

Date Of Print 5-12-2016

ऋषि के बोल

दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत्।

सत्यपूतां वदेद्वाचं मनःपूतं समाचरेत्।।मनु.

अर्थ- नीचे दृष्टि कर ऊँचे नीचे स्थान को देख के चले, वस्त्र से छान कर जल पिये, सत्य से पवित्र करके वचन बोले, मन से विचार के आचरण करें।

माता शत्रुः पिता वैरी येन बालो न पाठितः।

न शोभते सभामध्ये हंसमध्ये वको यथा ।।

यह किसी कवि का वचन है ।

अर्थ- वे माता और पिता अपनी सन्तानों के पूर्ण वैरी हैं जिन्होंने उन को विद्या की प्राप्ति न कराई, वे विद्वानों की सभा में वैसे तिरस्कृत और कुशोभित होते हं जैसे हंसों के बीच में बगुला। यही माता, पिता का क[illegible]व्य कर्म परमधर्म और कीर्ति का काम है जो अपने र[illegible]नों को तन,मन,धन से विद्या, धर्म सभ्यता [illegible]तम शिक्षायुक्त करना।

सत्वाधिकारी महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास के लिए प्रकाशक व मुद्रक विजयसिंह भाटी द्वारा महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास, महर्षि दयानन्द मार्ग, मोहनपुरा पुलिया के पास जोधपुर (राज.) से प्रकाशित एवं सैनिक प्रिण्टर्स, मकराणा मौहल्ला केरू हाऊस जोधपुर फोन 9829392411 से मुद्रित ।

सम्पादक फोन नं. 0291-2516655